Appendix-119
Resolution No. 38 {38-1 [38-1-13(8)]}

Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi

दूरस्थ एवं सतत शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

ऑल यू.जी. कोर्सेस/ सेमेस्टर-I

कोर्स क्रेडिट-2

मूल्य संवर्धन पाठ्यक्रम (VAC)

योग : दर्शन एवं क्रियायोग

(संस्कृत-विभाग)

As per the UGCF and National Education Policy 2020

संपादक मंडल

प्रो. ओम नाथ बिमली

डॉ. ब्रह्म प्रकाश

डॉ. कान्ता

पाठ्य-सामग्री लेखक

डॉ. सुचिता यादव

डॉ. अजीत कुमार

डॉ. अर्पित कुमार दुबे

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

प्रथम संस्करण : 2022

ई–मेल : ddceprinting@col.du.ac.in

sanskrit@col.du.ac.in

Published by:

Department of Distance and Continuing Education under the aegis of Campus of Open Learning, University of Delhi

Printed by:

मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अध्ययन सामग्री : 1 (इकाई I-III)

इकाई-I	पाठ 1 – योग परम्परा का इतिहास	1-14
	पाठ 2 – योग : आसन, प्राणायाम, ध्यान	15-27
इकाई-II	पाठ 3 – पतञ्जलिकृत योगसूत्र का सामान्य परिचय एवं समाधिपाद के प्रथम दो सूत्र	28-47
	पाठ 4 – चक्र-साधना	48-68
इकाई-III	पाठ 5 – आसन: सामान्य परिचय	69-102
	पाठ 6 – सूर्यनमस्कार एवं नाड़ीशोधन प्राणायाम	103-125

सम्पादिका

डॉ. कान्ता

सहायक प्रोफेसर

संस्कृत विभाग

मुक्त शिक्षा विद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ-1

योग परम्परा का इतिहास

डॉ. सुचिता यादव
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 योग परम्परा का इतिहास
    1.3.1 पूर्व वैदिक काल
    1.3.2 वैदिक काल
    1.3.3 औपनिषदिक काल
    1.3.4 दार्शनिक काल
    1.3.5 मध्यकाल
    1.3.6 आधुनिक काल
1.4 योग: अर्थ एवं परिभाषा
1.5 योग मार्ग के भेद
1.6 योग का महत्त्व
1.7 सारांश
1.8 पारिभाषिक शब्दावली
1.9 पाठ्य-प्रश्नों के उत्तर
1.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
1.11 संदर्भ ग्रंथ
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से विद्यार्थी-

- योग दर्शन की परम्परा से परिचित होंगे।
- वैदिक काल में योग के स्वरूप को समझ पायेंगे।
- उपनिषदिक काल में योग की भूमिका का अवलोकन कर सकेंगे।
- आधुनिक काल में योग के स्वरूप को समझ पायेंगे।
- योग की व्यवहारिक उपयोगिता से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन परम्परा में ज्ञान की छः शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा तथा वेदान्त। प्रायः इन सभी शाखाओं में ब्रह्म, जीव तथा सृष्टि के दार्शनिक स्वरूप की भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों के द्वारा व्याख्या की गयी है। दर्शन की इन शाखाओं में एक मुख्य शाखा जो योग दर्शन की मानी गई है इसमें आत्मा को परमात्मा से एकाकार करने के लिए अनेक नियमों का प्रतिपादन किया गया जिसका पालन करने से साधक कैवल्य प्राति(ज्ञान प्राप्ति) के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। प्राचीन मनीषियों द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिए योग विद्या का प्रणयन किया गया। प्रस्तुत पाठ में योग की प्रारम्भिक अवस्था से वर्तमान तक योग की क्या परम्परा रही है इसका वर्णन प्रस्तुत किया जायेगा।

1.3 योग परम्परा का इतिहास

योग दर्शन की परम्परा का का उद्भव किस काल में हुई, इसके विषय में कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। विभिन्न ग्रंथों में अनेक आचार्यों द्वारा अलग-अलग मत प्रस्तुत किये गये हैं। वैदिक साहित्य, स्मृति, पुराणेतिहासादि ग्रंथों में प्रजापति हिरण्यगर्भ को योग विद्या का उत्पत्तिकर्ता माना गया है। यथा बृहद् योगियाज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है-

"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।"

बृहद् योगियाज्ञवल्क्य स्मृति 12/5

अर्थात् हिरण्यगर्भ ही योग के आदि वक्ता हैं और उनसे प्राचीन और कोई नहीं है।

वैदिक ऋचाओं में हिरण्यगर्भ को प्रजापति ब्रह्मा का स्वरूप माना गया है, जिन्होंने सृष्टि के आरम्भ में ही इस जगत की रचना की और समस्त सृष्टि जगत के पालनकर्ता हुए। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भसूक्त में इसका वर्णन प्राप्त होता है कि-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥" ऋग्वेद1/121/1

महाभारत में योग विद्या के प्राचीन प्रणेता के रूप में हिरण्यगर्भ को माना गया है। महाभारत में कहा गया है-

"हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः॥'' महाभारत 12/349/65

श्रीमद्भागवत पुराण में इन्हीं हिरण्यगर्भ को योग में निपुण योग विद्या का ईश्वर स्वरूप कहा गया है-

"इदं हि योगेश्वर योगेनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद् यत्॥" श्रीमद्भागवत् पुराण 5/19/13

इससे यह माना जा सकता है कि योग विद्या वैदिक संहिताओं के काल से ही अस्तित्व में रही होगी। संस्कृत वाङ्मय के दार्शनिक परम्परा में योग दर्शन की स्वरूप विभिन्न रूपों में प्राप्त होत रही है, जो इस प्रकर है-

1.3.1 पूर्व वैदिक काल

वैदिक काल के पूर्व सिन्धु सभयता के उत्खनन में अनेक मूर्तियों का उल्लेख मिलता है जिसके शारीरिक रचना के आधार पर उन्हें योग मुद्राओं से युक्त माना जाता है,जैसे सिन्धु सभ्यता में अनेक देवी-देवताओं की प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। जिसमें देवी भगवती की प्रतिमा के साथ एक नरदेवता की तीन मुखों वाली प्रतिमा भी प्राप्त हुई है जिसमें वह देवता एक उच्च आसन पर हाथ और पैर को मोड़कर एक विशेष मुद्रा में बैठा हुआ है। इस आकृति को देखकर विद्वानों द्वारा योग परम्परा का प्रारम्भ वैदिक संहिताओं से प्राचीन माना है।

1.3.2 वैदिक काल

वैदिक काल में योग का आध्यात्मिक रूप में वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक ऋचाओं में ऋषियों द्वारा यज्ञक्रिया और उसके जप-तप के रूप में योग विद्या का प्रयोग किया जाता था। इस काल में वेदों और शात्रों की शिक्षा के साथ -साथ योग की शिक्षा भी दी जाती थी।

"यस्माद्दते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति॥" (ऋग्वेद 1/18/7)

अर्थात योग के बिना याज्ञिक क्रिया की सम्पन्नता सम्भव नहीं होती है।

"स घा नो योग अ भुवत्स राये स पुरंध्याम। गमद् वाजेभिरा स नः ॥'' (ऋग्वेद 1/5/3)

अर्थात वही परमात्मा हमारी समाधि के लिए प्रयुक्त हों, उस परमात्मा के साक्षात्कार से न केवल समाधि और ज्ञान की प्राप्ति का लाभ हो, अपितु वही परमात्मा अष्ट सिद्धियों(अणिमा, महिमा, लघिमा,गरिमा, प्राप्ति, प्राकम्य, ईशित्व, वशित्व) सहित हमारा कल्याण करें। यहाँ यह माना जा सकता है कि ऋचाओं में भी योग विद्या के अंगों का प्रभाव दिखाई देता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.3.3 औपनिषदिक काल

इस काल में उपनिषद ग्रंथों, महाभारत, रामायण तथा श्रीमद्भागवद्गीता इत्यादि में योग का विस्तार से वर्णन किया गया। इस काल में योग के अन्य मार्गों का प्रचलन अस्तित्व में आया। जैसे- ज्ञान, भक्ति, कर्म और राज योग। श्रीमद्भागवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को योग का लाभ बताते हुए कर्मयोग, भक्तियोग व ज्ञानयोग के विषय में उपदेश दिया है। गीता के में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥'' गीता 4/1

अर्थात् हे अर्जुन मैने इस योग विद्या का ज्ञान को सूर्य को दिया था, सूर्य से वैवस्वत मनु और वैवस्वत मन से उनके पुत्र इक्ष्वाकु को यह यह योग विद्या परम्परानुसार प्रदान की गई। इस काल में योग एक आध्यात्मिक पद्धति न होकर जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन गया था। उपनिषदों में योग की भिन्न व्याख्या करते हुए इसे शारीरिक अभ्यास से न जोड़कर मानसिक जप, तप इत्यादि भावों से युक्त माना गया । जैसाकि कठोपनिषद में बताया गया है-

"तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्'' कठोपनिषद् 2/3/11

अर्थात् वह स्थिर दशा जिसमें इन्द्रियाँ चित्तबन्ध के अधीन हो जाती है अर्थात् इन्द्रियाँ संयमित हो जाती है, उसे योग की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में मनुष्य सचेतन तथा जागरूक हो जाता है। योग के द्वारा ही समस्त पदार्थों की सृष्टि एवं लय होता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित **"गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद"** में याज्ञवल्क्य और गार्गी के बीच आसन, योगमुद्रा, प्राणायाम इत्यादि का संवाद प्राप्त होता है।

जैन और बौद्ध काल में योग का कोई व्यवस्थापित सिद्धान्त प्राप्त नहीं होता है। इस काल में सामाजिक तथा व्यक्तिगत आचरण को अधिक महत्व दिया गया। बौद्ध काल में अष्टांग मार्ग का उल्लेख मिलता है, जैसे- सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि। बौद्ध धर्म **'परमिता'** का वर्णन किया गया है जिसमें योग की छः अवस्थाओं का मानवीय मूल्यों के रूप में उल्लेख किया गया है, जैसे - दान, शील, क्षांती, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा।

इसी प्रकार जैन धर्म में पाँच महाव्रत अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह बताये गये हैं जो मनुष्य का समाजिक तथा व्यक्तिगत विकास करते हैं और उनके नैतिक मूल्यों का संवर्द्धन करते हैं। इससे यह स्पष्ट हता है कि इस काल में योग के क्रिया स्वरूप के प्रमुख तीन अंग-तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान को अधिक महत्त्व दिया गया।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.3.4 दार्शनिक काल

योग का विस्तृत एवं सर्वाङ्गीण विकास दर्शन काल में दिखाई देता है। इस काल में योग न केवल क्रियायोग के रूप में अपितु इसका एक व्यवहारिक अभ्यास रूप भी प्रचलन में आया। इस काल में महर्षि पतञ्जलि ने वैदिक ग्रंथों में प्राप्त योग विषयक सामग्री को सूत्रशैली के रूप में योगसूत्र नामक अपने ग्रंथ में प्रस्तुत किया। महर्षि पतञ्जलि ने अपने ग्रंथ में योग से सम्बद्ध सिद्धान्तों को 195 सूत्र में संकलित किया है। पतंजलि सूत्र का योग, राजयोग माना जाता है जिसे अष्टांग योग की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। इसके आठ अंग हैं: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। पातञ्जल योगसूत्र में अष्टांग योग को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि इसमें प्रथम चार अंगों से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास होता है और अन्तिम चार अवस्थाओं में मनुष्य आध्यात्मिक विकास की ओर उन्मुख होता है तथा सर्वशक्तिमान परमात्म तत्त्व से एकाकार होने में सक्षम हो पाता है। इस काल में पतंजलि योगसूत्र के अतिरिक्त योग से सम्बन्धित कई अन्य ग्रन्थों की भी रचना की गयी, जिनमें योगियाज्ञवल्क्यस्मृति, योगाचारभूमिशास्त्र, और विसुद्धिमग्ग प्रमुख हैं।

1.3.5 मध्यकाल

इस काल में महर्षि पतंजलि के उत्तरवर्ती विद्वानों द्वारा महत्त्वपूर्ण ग्रंथों जैसे- वशिष्ठ संहिता, योगसिद्धान्त चन्द्रिका, योगसूत्रवृत्ति, योग चन्द्रिका, योग मणिप्रभा इत्यादि के द्वारा योग के आध्यात्मिक पक्ष से अधिक शारीरिक सौष्ठव यथा- आसन तथा शारीरिक मुद्राओं, ध्यान तथा धारणा जैसी मानसिक क्रियाओं और प्राणायाम को अधिक महत्त्व देकर योग की एक नई दिशा को प्रशस्त किया। इस काल में योग की विविध पद्धतियों जैसे- हठयोग, लययोग, क्रियायोग इत्यादि का प्रारम्भ हुआ। इस काल में व्यवहारिक तथा अभ्यासयोग्य क्रियाओं को लेकर हठयोगप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता आदि ग्रंथों की रचना की गई। जैसे- हठयोगप्रदीपिका में आसन के अनेक भेदों का विस्तृत उल्लेख मिलता है जिससे योगी इन आसनों को करने में सक्षम हो सकें और साथ ही इसके लाभ तथा सावधानियों को भी समझ सकें।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1.3.6 आधुनिक काल

आधुनिक काल में योग के विस्तारयुक्त अर्थ **'योगः कर्मसु कौशलम्'** इस कथन को चरितार्थ करते हुए इसके व्यवहारिक रूप को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। योग चित्तवृत्तियों के निरोध के साथ-साथ कर्मों में निपुणता का भी सञ्चार करत् है। आधुनिक काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी परमहंस तथा उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द द्वार योग की परम्परा को आगे बढ़ाया गया और इसे देश के साथ-साथ विदेशों में भी प्रचारित-प्रसारित किया गया। विवेकानन्द ने ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग तथा राजयोग इन सभी योग पद्धतियों का एक साथ एक समन्वय रूप जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत किया और सर्वसाधारण जनता को योग, अध्यात्म तथा कर्म की ओर प्रेरित किया। 19 वीं -20 वीं सदी में योग का वैश्वीकरण प्रारम्भ हुआ जिसमें महर्षि महेश योगी, परमहंस योगानन्द, महर्षि रमण महर्षि, श्री अरबिन्द घोष, परमहंस योगानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी कुवलयानन्द तथा महात्मा गाँधी जैसे कई योगियों ने योग को एक नई दिशा प्रदान की और इसे एक धर्मनिरपेक्ष, व्यवहारिक स्वरूप में विश्व स्तर तक पहुँचाया। वर्तमान में योग एक महत्त्वपूर्ण क्रियाप्रणाली के रूप में प्रसिद्ध है और तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दामोदर मोदी की अध्यक्षता में सन् 2015 में योग को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिली और 21 जून 2015 पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाया गया।

पाठ्य प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए।
   - i. योग विद्या सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान नहीं थी। ( )
   - ii. योग के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ को माना गया है। ( )
   - iii. मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त नरदेवता की मूर्ति त्रिमुखी है। ( )
   - iv. वैदिक काल में योग की शिक्षा नहीं दी जाती थी। ( )
   - v. श्रीमद्भागवद्गीता में ज्ञानयोग का वर्णन मिलता है। ( )
   - vi. गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद कठोपनिषद् से सम्बद्ध है। ( )

1.4 योग : अर्थ एवं परिभाषा

छात्रो! योग के नाम से तो आप सभी परिचित होंगे। वर्तमान में योग अध्ययन तथा अभ्यास क्रिया दोनों ही दृष्टि से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से ही प्रायः योग केअतः यहाँ योग के अर्थ एवं परिभाषाओं के माध्यम से उसके सामान्य परिचय को जानना आवश्यक है। पाणिनी व्याकरणानुसार योग की व्युत्पत्ति

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

तीन धातुओं से अलग-अलग अर्थों में हुई है। यहाँ जिस योग की बात कही गयी है वह 'योग' शब्द **'युज समाधौ'** आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में **'घञ्'** प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। जिसका सामान्य अर्थ हुआ- समाधि अर्थात् चित्त वृत्तियों का निरोध। इस स्थिति में आत्मा तथा परमात्मा का मिलन होता है। वैसे 'योग' शब्द 'युजिर् योगे' चुरादिगण तथा 'युज् संयमने' रूधादिगण धातु से भी निष्पन्न होता है किन्तु तब इस स्थिति में योग शब्द का अर्थ क्रमशः जोड़ना, मिलाना तथा नियमन होता है। इसके आधुनिक पक्ष को अगर देखें तो योग का अर्थ मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक तथा वैश्विक इन सभी पक्षों को एक साथ जोड़कर उनका एकीकरण करना हो सकता है।

योग की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रायः अलग-अलग ग्रंथों में मिलती हैं। उनमें कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार से हैं जैसे-

महर्षि पतञ्जलि ने चित्त की पञ्चवृत्तियों(क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र तथा निरुद्ध) के निरोध को योग कहा है।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।" योगसूत्र 1/2

श्रीमद्भागवतगीता में योग को कर्म से जोड़ते हुए इसे कर्मयोग का अभिधान करने वाला माना है और कर्मों की कुशलता को योग कहा गया है-

"योगः कर्मसु कौशलम्।" श्रीमद्भागवतगीता 2/50

और साथ ही इस अनासक्ति से युक्त कर्म मोक्ष प्राप्ति में सहायक माना गया है और निष्काम कर्मयोग पर बल दिया गया है। योग वह परम अवस्था है जहाँ समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि इत्यादि शान्त, संयमित और स्थिर हो जाती हैं, ऐसी अवस्था को योग की अवस्था या परमगति की अवस्था कहा गया है। कठोपनिषद् में भी इस प्रकार कहा गया है –

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवात्ययौ॥'' कठोपनिषद्, 2/3/10-11)

वैशेषिक दर्शन में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है-

"तदनारम्भ आत्मस्ये मनसि शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः।" वैशेषिकसूत्र 6/2/16

अर्थात् मन के आत्मा में स्थित होने पर शरीर का जो दुःखाभाव है वह योग कहा जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/University of Delhi

इस प्रकार विभिन्न दार्शनिक ग्रंथों में योग की परिभाषाओं का पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण प्राप्त होता है लेकिन सभी परिभाषाओं का सार समाधि अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति, आत्मज्ञान तथा मन, इन्द्रिय तथा प्राणों की एकता ही है।

पाठ्य प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i. योग शब्द की व्युत्पत्ति ________धातु से हुआ है।

ii. चित्त की __________वृत्तियाँ मानी गयी हैं।

iii. योगः कर्मसु कौशलम् उक्ति __________ग्रंथ से सम्बद्ध है।

iv. युज् समाधौ धातु से योग का अर्थ _________से लिया गया है।

1.5 योग मार्ग के भेद

योग की साध्य अवस्था समाधि, मोक्ष, कैवल्य आदि तक पहुँचने के लिए अनेक साधकों ने जो साधन अपनाये उन्हीं साधनों का वर्णन योग ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। ये अलग-अलग साधन योग के प्रकार के रूप में जाने जाते हैं और इनका उद्देश्य स्वास्थ्य लाभ और मोक्षप्राप्ति माना जाता है। इन भिन्न-भिन्न पद्धतियों में प्रायः ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, लय योग, राज योग, हठ योग, मंत्रयोग तथा कुण्डलिनी योग का वर्णन प्राप्त होता है। योग के प्रसिद्ध ग्रंथ शिवसंहिता तथा गोरक्षशतक में योग की चार कोटियाँ जैसे – मंत्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग बतायी गयी हैं।

"मंत्रयोगो हष्च्वैव लययोगस्तृतीयकः।

चतुर्थो राजयोगः॥" (शिवसंहिता, 5/11)

"मंत्रो लयो हठो राजयोगन्तर्भूमिका क्रमात्

एक एव चतुर्थोऽयं महायोगोभियते॥" (गोरक्षशतकम्)

i. मंत्रयोग

'मंत्र' का समान्य अर्थ है- **'मननात् त्रायते इति मन्त्रः'।** मन को त्राण (पार कराने वाला) कराने वाला ही मंत्र है। मन्त्र योग का सम्बन्ध मन से है, मन को इस प्रकार परिभाषित किया है- *मनन् इति मनः।* जो

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मनन या चिन्तन करता है वही मन है। मन की चंचलता का निरोध मंत्र के द्वारा करना मंत्र योग है। मंत्र योग के विषय में योगतत्वोपनिषद् में कहा गया है कि मंत्रयोग उन साधकों के लिए है जो अल्पबुद्धि है।

"योग सेवन्ते साधकाधमाः।"

मंत्र से ध्वनि तरंगें पैदा होती है मंत्र शरीर और मन दोनों पर प्रभाव डालता है। मंत्र में साधक जप का प्रयोग करता है मंत्र जप में तीन घटकों का काफी महत्व है वे घटक-उच्चारण, लय व ताल हैं। तीनों का सही अनुपात मंत्र शक्ति को बढ़ा देता है। मंत्रजप मुख्यरूप से चार प्रकार (वाचिक, मानसिक, उपांशु तथा अणपा) से किया जाता है।

ii. हठयोग

हठ का शाब्दिक अर्थ हठपूर्वक किसी कार्य को करने से लिया जाता है। हठप्रदीपिका में हठ का अर्थ इस प्रकार बताया गया है-

"हकारेणोच्यते सूर्यष्ठकार चन्द्र उच्यते।
सूर्या चन्द्रमसो र्योगाद्धठयोगोऽभिधीयते॥"

ह का अर्थ सूर्य तथा **ठ** का अर्थ चन्द्र बताया गया है। सूर्य और चन्द्र की समान अवस्था हठयोग है। शरीर में कई हजार नाड़ियाँ है उनमें तीन प्रमुख नाड़ियों का वर्णन है, वे इस प्रकार हैं। सूर्यनाड़ी अर्थात पिंगला जो दाहिने स्वर का प्रतीक है। चन्द्रनाड़ी अर्थात इड़ा जो बायें स्वर का प्रतीक है। इन दोनों के बीच तीसरी नाड़ी सुषुम्ना है। इस प्रकार हठयोग वह क्रिया है जिसमें पिंगला और इड़ा नाड़ी के सहारे प्राण को सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराकर ब्रह्मरन्ध्र में समाधिस्थ किया जाता है। हठप्रदीपिका में हठयोग के चार अंगों का वर्णन है- आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध तथा नादानुसधान। घेरण्डसंहिता में सात अंग- षटकर्म, आसन, मुद्राबन्ध, प्राणायाम, ध्यान, समाधि जबकि योगतत्वोपनिषद् में आठ अंगों का वर्णन है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

iii. लययोग

चित्त का अपने स्वरूप विलीन होना या चित्त की निरूद्ध अवस्था लययोग के अन्तर्गत आता है। साधक का चित्त जब सदैव ब्रह्म ध्यान में लीन रहता है तब इसे लययोग कहते हैं। योगतत्वोपनिषद्(22/23) में इस प्रकार वर्णन मिलता है-

"गच्छस्तिष्ठन् स्वपन् भुंजन् ध्यायेन्निष्कलमीश्वरम् स एव लययोगः स्यात ॥"

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

iv. राजयोग

राजयोग समस्त योग में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। राजयोग में सभी नियमों का साङ्गोपांग वर्णन प्राप्त होता है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित अष्टांग योग का वर्णन राजयोग के अन्तर्गत माना जाता है। राजयोग का विषय चित्तवृत्तियों का निरोध करना है। महर्षि पतंजलि के अनुसार समाहित चित्त वालों के लिए अभ्यास और वैराग्य तथा विक्षिप्त चित्त वालों के लिए क्रियायोग के सहयोग से परम तत्त्व तक पहुँचने का उपाय बताया गया है। इन साधनों का उपयोग करके साधक के समस्त क्लेशों का नाश होता है, चित्त के प्रसन्न तथा संयमित होने से ज्ञान का प्रकाश फैलता है और विवेक ख्याति प्राप्त होती है।'

"योगाङ्गानुष्ठानाद् शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेख्यातेः॥" योगसूत्र (2/28)

राजयोग के अन्तर्गत महर्षि पतंजलि ने अष्टांग को इस प्रकार बताया है-

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि।" योगसूत्र

योग के आठ अंगों में प्रथम पाँच बहिरंग यथा- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा अन्य तीन अन्तरंग में ध्यान, धारणा एवं समाधि आते हैं। प्रथम पाँच अंग साधक को साध्य की ओर जाने के लिए तैयार करते हैं और अन्तिम तीन अंग समाधि प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करते हैं।

v. **ज्ञानयोग –** इस योग के द्वारा संन्यासी पुरुष उस देवत्व का ध्यान करते हुए उसमें लीन हो जाते हैं। इस योग में साधक शास्त्रों के अध्ययन, जप, तप, धारणा, ध्यान आदि के द्वारा उस परमात्मा का स्वरूप ज्ञान प्राप्त करता है।

vi. **कर्मयोग –** कर्मयोग से तात्पर्य है जहाँ कार्य के फल की अपेक्षा किए बिना कार्य को ईमानदारीपूर्वक करना। इसे निष्काम कर्म के नाम से भी जाना जाता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इसी योग का उपदेश देते हुए कहा है- "कर्मण्यणेवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन्।" अर्थात् व्यक्ति को अपने कर्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए और निरन्तर अपने कार्य की कुशलता की वृद्धि की जानी चाहिए जो कर्मयोग से ही सम्भव हो सकती है जैसा कि कहा गया है- योगः कर्मसु कौशलम्।

vii. **भक्ति योग –** इस योग के द्वारा समर्पण भाव से भगवान की भक्ति में लीन होकर देवत्व का आराधन करना भक्ति योग कहलाता है। स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि भक्तियोग प्रतिफल की अपेक्षा से रहित होकर भगवान के प्रति प्रेम को सीखाता है। इस योग के द्वारा व्यक्ति भगवान से किसी लालचवश नहीं अपितु स्वयं को भगवान के अधीन मानकर कीर्तन, स्तुति, उपासना और स्वकर्म करता है।

viii. **कुण्डलिनी योग –** प्राणशक्ति अनेक नाड़ियों एवं षट्चक्रों के माध्यम से मानव शरीर में विचरण करती है जिससे शरीर अपना कार्य संचालन उचित ढंग से करने में सक्षम होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इसलिए प्राणायाम तथा ध्यान योग से इस कुण्डलिनी शक्ति को जागृत की जाती है जिससे शरीर तनावमुक्त होता है और शारीरिक चेतना जागृत होकर ब्रह्मतत्त्व में लीन हो पाती है।

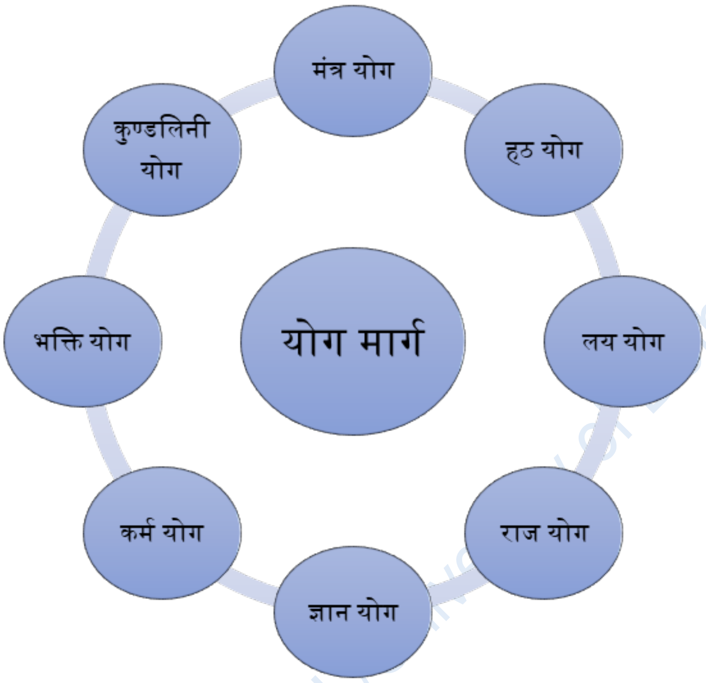

पाठ्य प्रश्न

3. निम्न प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. गोरक्षाशतक ग्रंथ में योग के भेद बताए गये हैं। 4/6

ii. सुषुम्ना नाड़ी का वर्णन मिलता है। हठयोग/मंत्रयोग

iii. घेरण्डसंहिता में योग के अंगों का वर्णन मिलता है। 7/9

iv. अष्टांग योग का वर्णन किया गया है। पातञ्जल योगसूत्र/घेरण्डसंहिता

1.6 योग का महत्त्व

योग दर्शन मानवतावादी जीवन दर्शन की वह शाखा है जिसमें मन, शरीर तथा आत्मा इन तीनों का योग होता है। योग का क्षेत्र केवल आध्यात्मिकता तक ही सीमित नहीं है अपितु वर्तमान भौतिकतावादी समय में यह अन्य कई क्षेत्रों में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करता है। जो इस प्रकार है-

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- **स्वास्थ्य क्षेत्र**- योग को प्राचीन काल से ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आयुर्वेद का मुख्य भाग योग विद्या पर ही आधारित है। योग मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही दुःखों का नाश करता और सुख प्रदान करता है। चरक संहिता में कहा गया है-योगस्तु सुखानां कारणं समः। आचार्य चरक सम्पूर्ण स्वास्थ्य का कारण इन्द्रिय, मन, बुद्धि के समयोग को माना है। अतः इसके अभ्यास से मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार का लाभ मिलता है। योग के द्वारा अनेक रोगों का उपचार आसानी से तथा शीघ्रतापूर्ण किया जा सकता है।
- **सामाजिक** – योग के द्वारा समाज में व्यक्ति का एक सौहार्दपूर्ण आचरण स्थापित होता है। अष्टांग योग में यम के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, स्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इत्यादि नियमों के पालन से व्यक्ति समाज में एक उन्नत तथा महान् आचरण स्थापित करता है।
- **कार्यदक्षता** – योग का अभ्यास कार्य की कुशलता में दक्ष बनाता है। श्रीमद्भागवद्गीता में योगः कर्मसु कौशलम् कहा गया है अर्थात् योग से कर्म में कुशलता आती है। मनुष्य को अपना कार्य उपयुक्त तरीके से करने के लिए शारीरिक रूप से तो सक्षम बनाता ही है और साथ ही मानसिक संयम को भी बनाए रखता है जिससे व्यक्ति बिना दुःख के अपना कार्य करने में युक्त होता है और निष्काम कर्म में प्रवीण होता है।
- **मानसिक लाभ**- आज के तनावपूर्ण जीवन में योग के निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति मानसिक तनाव, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि क्लेशों को समाप्त करने में सफल होता है। तनाव अनेक रोगों का कारण होता है अतः योग उन सभी कारणों के मूल को ही समाप्त कर देता है जिससे रोग, तनाव, क्लेश इत्यादि उत्पन्न होते हैं।
- **आध्यात्मिक लाभ** – इस संसार में कुछ जन्मतः ज्ञानसिद्ध योगी होते हैं जिन्हें प्रारम्भ से ही आत्मा तथा परमात्मा के एकाकार का ज्ञान हो जाता है और कुछ ऐसे योगी होते हैं जो योग दर्शन में बताए गये अष्टांग मार्ग के बहिरंग तथा अंतरंग मार्गों का अनुसरण करके उस परमात्म तत्त्व के स्वरूपाकार का अनुभव करने में सक्षम हो पाते हैं।
- **आर्थिक क्षेत्र**– योग विद्या का ज्ञान सामाजिक, आध्यात्मिक क्षेत्र के साथ-साथ आर्थिक क्षेत्र में भी महती भूमिका का निर्वहण करती है। योग विद्या के ज्ञान से आज कई योग शिविर की स्थापना की गई है जहाँ योग को सिखाया जाता है और इससे आर्थिक लाभ भी प्राप्त किया जाता है।

1.7 सारांश

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के पश्चात् आपने योग परम्परा के आदि प्रवर्तक हिरण्यगर्भ के विषय में जाना कि सम्भवतः योग विद्या का प्रारम्भ हिरण्यगर्भ के द्वारा वैदिक काल में ही हो चुका होगा क्योंकि हिरण्यगर्भ को समस्त सृष्टि का रचयिता माना गया है। योग के इतिहास परम्परा में क्रमशः वैदिक काल,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

शास्त्रीय काल इत्यादि में योग के स्वरूप के विषय में जाना। योग का अन्तिम लक्ष्य समाधि की अवस्था तक पहुँचना है इस अर्थ में योग शब्द में *युज् समाधौ* धातु से *घञ्* प्रत्यय लगने पर योग का समाधि अर्थ ग्रहण किया जाता है। अतः चित्त की वृत्तियों का निरोध कर आत्मज्ञान की प्राप्ति तक पहुँचना ही योग है। योग के अन्तर्गत हठयोग, लययोग, राजयोग इत्यादि योग के मार्गों का अध्ययन किया। योग मनुष्य के जीवन में कितना उपयोगी है और किन क्षेत्रों में योग की भूमिका सर्वोपरि होती है उन क्षेत्रों के आधार पर योग के महत्त्व को भी इस पाठ के अन्तर्गत समझा।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

पुरातन – प्राचीन
अग्रे – आगे की ओर
दाधार – धारण करना
धारणा – चित्त को किसी एक देशविशेष में लगाना
निरोध – रोकना
वृत्ति – इन्द्रिय व्यापार
चित्त – मन तथा बुद्धि
दीप्ति - प्रकाश

© DDCE/COL/University of Delhi

1.9 पाठ्य-प्रश्नों के उत्तर

1. i. गलत ii. सही iii. सही iv. गलत v. सही vi. गलत 2. i. युज् समाधौ ii. पाँच iii. पातञ्जल योगसूत्र iv. समाधि	3. i. 4 ii. हठयोग iii. 7 iv. पातञ्जल योगसूत्र

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' सूत्र के आधार पर योग का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. योग दर्शन की ऐतिहासिक परम्परा पर निबन्धात्मक लेख लिखिए ।
3. योग के मार्गों का विश्लेषण कीजिए।

1.11 संदर्भ-ग्रन्थ

- सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, *आसन, प्राणायाम मुद्रा बन्ध,* योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2004.
- Vivekananda, Swami(comm.), *Patanjali Yogsutras*, Rajyoga.

1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- भारती, परमहंस स्वामी अनन्त, *योग दर्शन,* चौखम्भा ओरियन्टालिया, नई दिल्ली,
- पाण्डेय, राजकुमारी, *भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम,* राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1993.
- Saraswati, Omanand Swami, Patanjali Yog Pradeep, Gita Press, Gorakhpur, 2013.
- Swami Sivananda, Angellis, David De (Ed.), Science of Pranayam, All Rights Reserved, 2019.
- Shastri, Udayveer, Patanjali-Yoga darshanam, Govindram Hansanand Publication, Delhi.

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ 2

योग : आसन, प्राणायाम, ध्यान

डॉ. सुचिता यादव
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संरचना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 आसन : अर्थ एवं महत्त्व
 2.3.1 आसनों की संख्या तथा प्रकार
 2.3.2 आसन सिद्धि के उपाय
 2.3.3 आसन का महत्त्व
2.4 प्राणायाम
 2.4.1 प्राणायाम के प्रकार
 2.4.2 प्राणायाम का महत्त्व
 2.4.3 प्राणायाम का प्रभाव
2.5 ध्यान के लाभ
2.6 सारांश
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 पाठ्य-प्रश्नों के उत्तर
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
2.10 संदर्भ ग्रंथ
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी-

- योगाङ्गों के विषय के समझ पायेंगे।
- योग के प्रमुख अंग आसन के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- आसन के महत्त्व को समझ पायेंगे।
- आसन को अपने व्यवहारिक जीवन में प्रयोग कर पायेंगे।

2.2 प्रस्तावना

दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख शाखा योग दर्शन की है। योग दर्शन में शारीरिक एवं मानसिक अवस्था की शान्ति एवं विकास के लिए अनेक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है तथा साथ ही इन सिद्धान्तों को सामान्य जनजीवन के व्यवहारिक प्रक्रिया में भी प्रयोग करने पर बल दिया गया है। इस सन्दर्भ में पतञ्जलि कृत योगसूत्र ग्रंथ एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सिद्ध होता है जिसमें योग के विभिन्न चरणों की सामान्य जानकारी दी गई है और साथ हीइसके दार्शनिक महत्त्व को भी प्रस्तुत किया है । योग के अष्टांग बताये गये हैं जो इस प्रकार चरणबद्ध क्रम में प्राप्त होते हैं - यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । इन अंगों के क्रमशः अभ्यास से व्यक्ति अपने चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है।

2.3 आसन: अर्थ एवं महत्त्व

योग क्रिया के अनेक मार्ग बताए गये हैं जिनमें राजयोग प्रसिद्ध योग की श्रेणी में आता है। महर्षि पतञ्जलि का योगसूत्र ग्रंथ राजयोग के नियमों एवं सिद्धान्तों के लिए प्रचलित माना जाता है। इसी राजयोग में अष्टांग योग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार्र, धारणा, ध्यान तथा समाधि का वर्णन प्राप्त होता है। अष्टांग योग में योग का तृतीय अंग आसन को बताया गया है। यम तथा नियम का अभ्यास करने के बाद व्यक्ति अग्रिम अभ्यास की ओर बढ़ता है जिसे आसन नाम से जाना जाता है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की अवस्था में जाने के लिए आसन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। वर्तमान में आसन का तात्पर्य सामान्य व्यवहारिक भाषा में बैठने की मुद्रा से लिया जाता है, किन्तु योग दर्शन में आसन को अष्टांग के अन्तर्गत योग क्रिया का बाह्य अंग माना गया है। आसन का सम्बन्ध शारीरिक क्रिया से है, जिसके अभ्यास से शरीर में स्थूलता और आलस्य का नाश होता है और शरीर सात्त्विक, हल्का(लघु) और प्रकाशयुक्त

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

हो जाता है। पातञ्जल योगदर्शन में आसन की परिभाषा भी शारीरिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए दी गई है, यथा-

'स्थिरसुखासनम्।' (पातञ्जल योगसूत्र 2/46)

अर्थात् जो स्थिर और सुखदायी हो उसे आसन कहते हैं अथवा सुखपूर्वक आसन (बैठकर) लगाकर ध्यान करना जिसमें मन को एकाग्र किया जा सके, जैसे- पद्मासन, स्वस्तिकासन, गोमुखासन आदि। विभिन्न योग ग्रंथों जैसे– हठयोग, योगबिन्दु उपनिषद्, योग चूड़ामणि, पातञ्जल योगसूत्र तथा शाण्डिल्योपनिषद् इत्यादि में आसन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

2.3.1 आसनों की संख्या तथा प्रकार

पातञ्जल योगसूत्र में आसन के पारिभाषिक अवधारणा को स्पष्ट किया है लेकिन इसमें आसनों की संख्या के विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। पतञ्जलि के उत्तरवर्ती विद्वानों के योग ग्रंथों में आसनों की संख्या का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जैसे- घेरण्ड संहिता में आसनों की संख्या को लेकर कहा गया है कि संसार में आसनों की संख्या इतनी अधिक है जितना इस संसार में जीव-जन्तु पाये जाते हैं। इस संहिता के अनुसार भगवान शिव ने आसनों की संख्या 84 लाख बतायी है लेकिन उसमें भी 32 आसनों को शुभ माना गया है यथा-

"आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः।
चतुरशीतिलक्षणानि शिवेन कथितानि च॥"

घेरण्ड संहिता 2/1

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार भगवान् शिव ने आसनों की संख्या 84000 बताई है और उसमें भी चार प्रकार के आसन को मुख्य बताया गया है।

"चतुरशीत्यासनानि शिवेन कथितानि च।
तेभ्यश्चतुष्कमादायसारभूतः ब्रवीम्यहम्॥"

हठयोगप्रदीपिका 1/35

हठयोगप्रदीपिका में बताये गये चार महत्त्वपूर्ण आसन हैं – सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन तथा भद्रासन।

सिद्धं पद्मं तथा सिंह भद्र चेति चतुष्ट्यम्।
श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत् सिद्धासने सदा॥

हठयोगप्रदीपिका 1/36

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

योग दर्शन के विभिन्न ग्रंथों में आसनों की अलग-अलग संख्या बतायी गयी है –

गोरक्षा संहिता	1
योग चूड़ामणि	2
योग कुण्डल	2
अमृताद्	3
ध्यानबिन्दु उपनिषद्	4
योगतत्त्वोपनिषद्	4
वाराह संहिता	11
हठयोग प्रदीपिका	15
त्रिशिखब्राह्मण	17
घेरण्ड संहिता	32

इस प्रकार आसनों की संख्या अलग-अलग बतायी गयी हैं लेकिन यदि हम देखें और समझे तो यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि आसन की कोई निश्चित संख्या नहीं हो सकती बल्कि जिसमें सुखपूर्वक और देर तक बैठा जा सके उसी को आसन कहा जा सकता है।

घेरण्ड संहिता में आसन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है –

- **ध्यानात्मक आसन** – इस आसन के अभ्यास से साधक के शरीर में स्थिरता आती है और वह प्राणायाम तथा ध्यान के लिए तैयार होता है। जैसे – सिद्धासन, पद्मासन आदि
- **विश्रान्त आसन** : इस आसन के अभायस से मन और शरीर दोनों में शिथिलता आती है और वह एकाग्रावस्था की ओर प्रवृत्त होता है। जैसे-शवासन, मकरासन आदि।
- **संवर्धनात्मक आसन** – इस प्रकार के आसन से शरीर सुदृढ़, विकसित तथा आरोग्य होता है। जैसे – मयूरासन, गोमुखासन, धनुरासन, भुजंगासन आदि।

अभ्यास प्रक्रिया की दृष्टि से आसन को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं –

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- **खड़े होकर करने वाले आसन-** ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, अर्धचन्द्रासन, त्रिकोणासन, वृक्षासन, पादहस्तासन, गरुड़ासन, नटराजासन, सूर्यनमस्कार आदि
- **बैठकर किये जाने वाले आसन –** पद्मासम, वज्रासन, भद्रासन, सिद्धासन, कूर्मासिन, पश्चिमोत्तासन, शशांकासन
- **पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन –** भुजंगासन, मकरासन, खगासन, शलभासन, धनुरासन, मयूरासन आदि।
- **पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले आसन-** शवासन, उत्तान पादासन, नौकासन आदि।

2.3.2 आसन सिद्धि के उपाय

आसन को स्थिर एवं सरल बनाने के लिए शरीर की स्वभाविक चेष्टाएँ अर्थात् प्रयत्न जैसे – हाथ-पैर को हिलाना, सिर हिलाना, नेत्रों को बार-बार खोलना इत्यादि क्रियाओं को स्थिर करने का पौनःपुन्येन अभ्यास करना चाहिए। महर्षि पतञ्जलि ने आसन को सिद्ध करने के लिए दो उपाय बताए हैं - प्रयत्न शैथिल्य तथा आनन्त्य समापत्ति। योगसूत्र में बताया गया है –

"प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम्॥" योगसूत्र 2/47

प्रयत्न शैथिल्य- प्रयत्न का अर्थ है – शारीरिक चेष्टा तथा शैथिल्य का अर्थ है – शिथिलता अर्थात् रोकना। अर्थात् स्वभाविक शरीर की चेष्टाओं को रोक देना 'प्रयत्न शैथिल्य' कहा जाता है। साधक द्वारा अपनी स्वभाविक शारीरिक क्रियाओं को रोककर स्थिर होकर किसी सुखपूर्ण उचित स्थान पर बैठकर आसन को सिद्ध किया जा सकता है।

अनन्त समापत्ति- अनन्त अर्थात् परमात्मा और समापत्तिभ्याम् अर्थात् ध्यान लगाना । अनन्त समापत्तिभ्याम् अर्थात् परमात्मा में ध्यान लगाने से भी साधक आसन को सिद्ध कर सकता है। जब साधक का मन उस परम तत्त्व में लीन हो जाता है तब उसको किसी भी प्रकार की क्रियाएँ बाधित नहीं करती हैं और वह अपने आसन को सिद्ध कर पाता है।

2.3.3 आसन का महत्त्व

साधक द्वारा आसन के सिद्ध हो जाने पर मनुष्य द्वन्द्वों के दुःख से पीड़ित नहीं होता। जैसा कि योगसूत्र में भी कहा गया है-

"ततो द्वन्द्वानभिघातः॥" योगसूत्र 2/48

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अर्थात् आसन की सिद्धि हो जाने पर साधक (योगी) सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख, लाभ-हानि इत्यादि द्वन्दों के प्रभाव से रहित हो जाता है। आसन के अभ्यास से ये सभी द्वन्द्व चित्त को चंचल नहीं बनाते और मोक्ष सिद्धि की प्राप्ति अर्थात् आत्मा और परमात्मा के एकीकरण में सहयोगी होते हैं। आसन के अभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन आ जाता है।

"कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्।" हठयोगप्रदीपिका 1/19

योगासन के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक विकास, वृद्धावस्था तथा व्याधियों का निवारण किया जा सकता है। योगासनों का नैरन्तर्य अभ्यास सभी आयु तथा लिङ्ग के व्यक्ति किसी भी स्थान तथा पर्यावरण में कर सकते हैं। योगासनों के द्वारा शारीरिक तथा मानसिक विश्रान्ति अर्थात् शिथिलता भी प्राप्त होती है। योगासनों के अभ्यास से पाचन तंत्र, तंत्रिका तंत्र को भी सही किया जा सकता है। आसन शारीरिक विकास के साथ-साथ आन्तरिक अंगों का संवर्द्धन भी करती है तथा प्राणायाम के लिए तैयार करती है।

पाठ्य प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   i. योगसूत्र ______ पतञ्जलि की रचना है।
   ii. अष्टांग योग का तृतीय अंग _______ है।
   iii. हठयोगप्रदीपिका ________ की रचना है।
   iv. आसन ________ एवं ________ होती है।

2.4 प्राणायाम

अष्टांग योग का चतुर्थ अंग प्राणायाम को माना गया है। प्राणायाम प्राण तथा आयाम इन दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका तात्पर्य है प्राणशक्ति का नियंत्रण अथवा नियमन करना। पातञ्जल योगसूत्र में प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है –

"तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।" योगसूत्र 2/49

अर्थात् आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति का नियमन करना प्राणायाम कहलाता है। श्वास-जो वायु बाहर से भीतर जाती है। प्रश्वास-जो वायु भीतर से बाहर जाती है उसे प्रश्वास कहते हैं इसी श्वास

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

और प्रश्वास का अपने सामर्थ्य के अनुसार रोकना प्राणायाम कहलाता है। श्वास-प्रश्वास का नियमन प्राण वायु के द्वारा होती है। वायु के पाँच भेद माने गये हैं – प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान।

- **प्राण वायु-** ऊपर की ओर चलने वाला और नासिका के अग्र भाग में निवास करने वाला प्राण वायु कहा जाता है।
- **अपान वायु-** नीचे की ओर चलने वाला तथा गुदा आदि निम्न स्थानों में निवास करने वाला अपान वायु कहा जाता है।
- **व्यान वायु-** सभी ओर चलने वाला तथा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहने वाला व्यान वायु कहा जाता है।
- **उदान वायु-** कण्ठ में निवास करने वाला वायु तथा ऊपर की ओर चलने वाला वायु उदान वायु होता है।
- **समान वायु-** शरीर के मध्य भाग नाभि में निवास करने वाला तथा खाये हुए भोजन को पचाने वाला वायु समान वायु कहा जाता है।

ये पाँच वायु व्यक्ति के शरीर के सभी अंगों में अपने कार्यों का संचालन करती है । इन्हीं में प्राण और अपान वायु के सम्मिलन को प्राणायाम कहा जाता है।

"प्राणापानसमायोगः प्राणायाम इतीरितः॥" योगियाज्ञवल्क्य 6/2

2.4.1 प्राणायाम के प्रकार

श्वास(बाहर की वायु का नासिका द्वारा अन्दर प्रवेश कराना) तथा प्रश्वास(कोष्ठ स्थित वायु का अन्दर से बाहर निकालना) की गतियों का नियमन तीन प्रकार के प्राणायाम - बाह्य(रेचक), आभ्यान्तर(पूरक) तथा स्तम्भ(कुम्भक) के आधार पर की जाती है। पतञ्जलि योगसूत्र के अनुसार –

"स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः॥" योगसूत्र 2/50

1. **बाह्यवृत्ति(रेचक/प्रश्वास)** – श्वास को बाहर निकालकर उसकी स्वभाविक गति को रोकना रेचक प्राणाम है।
2. **आभ्यान्तरवृत्ति(पूरक/श्वास)** - श्वास को अन्दर खींचकर उसकी स्वभाविक गति को रोकना पूरक प्राणायाम कहलाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3. **स्तम्भवृत्ति प्राणायाम(कुम्भक)** – श्वास-प्रश्वास की गतियों को एक निश्चित समय के लिए रोक देना कुम्भक प्राणायाम कहलाता है।

इस प्रकार बाह्य, आभ्यन्तर तथा स्तम्भ वृत्ति से युक्त प्राणायाम का अन्य नाम रेचक, पूरक तथा कुम्भक भी कहा जाता है और यह तीनों में से प्रत्येक प्राणायाम देश(स्थान), काल(समय) तथा संख्या के भेद से तीन प्रकार का होता है।

2.4.2 प्राणायाम का महत्त्व

चित्त की एकाग्रता तथा शान्ति के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास से चित्त स्थिरता को प्राप्त करता है। वायु के नियमन से जीवन शक्ति नियमित होता है इसलिए जीवन तथा मृत्यु के नियमन के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए । वायु शरीर रूपी रथ को धारण करने वाला, शरीर की सभी इन्द्रियों का कर्त्ता, सभी प्रकार की चेष्टाओं का प्रवर्तक, मन का नियन्त्रक और प्रेरक होता है। वायु शरीर के प्रत्येक कार्य को सुचारु रूप से करती हुई आयु वर्द्धन तथा आरोग्य में कारण भूत होती है।

"वायुरायुर्बलं वायुर्वातुर्धाता शरीरिणाम्।

वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः॥" (चरक संहिता28/3)

2.4.3 प्राणायाम का लाभ

मनुष्य अज्ञानता के कारण सांसारिक मोह-माया में लिप्त रहता है और दुःखों के आवागमन में फँसा रहता है। प्राणायाम से इसी अज्ञान का नाश होकर विवेक ज्ञान होता है।

i. प्राणायाम के अभ्यास से बुद्धि का विकास होता है, उसका संवर्द्धन होता है क्योंकि प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मस्तिष्क में वायु का प्रवाह सुचारु रूप से होता है। इसी बात को पातञ्जल योग सूत्र में कहा गया है कि प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास अज्ञान का आवरण हटाकर प्रकाश अर्थात् ज्ञान का प्रसार करती है।

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।" पातञ्जल योगसूत्र2/52

ii. प्राणायाम के द्वारा एकादशेन्द्रियों से प्राप्त दोष समाप्त हो जाते हैं जैसे- स्वर्ण आदि धातुओं को तपाने से उसकी मलिनता समाप्त हो जाती है। अमृतोपनिषद् में कहा गया है –

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

यथा पर्वता धातूनां बह्यान्ते धमता मलाः।
तथैन्द्रियकृता दोषाः दह्यन्ते प्राण धारणात्॥

iii. प्राणायाम के प्रयास से धारणाओं (किसी एक स्थान विशेष में मन एकाग्र होना)में मन की योग्याता प्राप्त होती है अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से मन स्थिर होता है और उसमें जड़ तथा चेतन के प्रति भेद करने की योग्यता प्राप्त होती है।

"धारणासु च योग्यता मनः॥"

पातञ्जल योगसूत्र 2/53

iv. प्राणायाम करने से नाड़ी तन्त्र शुद्ध हो जाती है, उसके समस्त मल नष्ट हो जाते हैं और प्राणवायु नाड़ीतन्त्र में प्रवेश करती है। बोधशक्ति का विकास होता है, प्राणायाम से ज्ञान प्राप्ति और चित्त में आनन्द प्राप्त होता है।

"प्राणायामातः खेचरत्वं प्राणायामाद् रोगनाशनम्।

प्राणायामादबोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी।

आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्॥"

घेरण्ड संहिता 5/56

v. प्राणायाम के समुचित अभ्यास से सभी रोगों का नाश होता है और विधि विपरीत अभ्यास से रोगों की सम्भावना भी बनी रहती है।

"प्राणायामादियुक्तेन सर्वरोगक्षयेन भवेत्।

अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥"

हठयोगप्रदीपिका 2/16

प्राणायाम केवल श्वासनिक व्यायाम ही नहीं है, अपितु एक विशिष्ट विधि है जिससे मन शान्त होता है और चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है और मन समाधि की अवस्था की ओर अग्रसर होने लगता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

पाठ्य-प्रश्न

2. निम्नलिखित प्रश्न में सही तथा गलत उत्तर का चयन कीजिए।

i. अष्टांग योग का चतुर्थ अंग प्राणायाम माना जाता है। सही/गलत

ii. आसन के स्थिर हो जाने पर प्राणायाम सम्भव नहीं होता है। सही/गलत

iii. प्राणायाम चार प्रकार के होते हैं। सही/गलत

iv. प्राणायाम के अभ्यास से अज्ञान का आवरण हटता है। सही/गलत

2.5 ध्यान के लाभ

अष्टांग योग के अंतरंग अंगों में ध्यान दूसरा अंग है जो समाधि की ओर ले जाने वाला मार्ग है। यह धारणा के बाद और समाधि के पहले की अवस्था है। ध्यान से तात्पर्य है जिस भी ध्येय वस्तु या प्रदेश में चित्त को लगाया जाए या जिस विषय पर चित्त की वृत्तियों को केन्द्रित किया जाए, उसी वस्तु पर निरन्तर चित्त को स्थिर करना ध्यान कहलाता है। पतञ्जलि योगसूत्र के अनुसार-

"तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।" पातञ्जल योगसूत्र 3/2

अर्थात् धारणा की हुई वस्तु में चित्त की एकतानता अर्थात् एक सा बने रहना ध्यान कहा जाता है।

सांख्यदर्शन में महर्षि कपिल ने राग सम्बन्धी विषयों के अभाव को ध्यान कहा है अर्थात् किसी भी सांसारिक विषयों में राग, मोह-माया का न होना ध्यान कहलाता है –

'रागोपहतितद्ध्यानम्।' सांख्य 3/3

'ध्यानं निर्विषयं मनः।" सांख्य 6/65

ध्यान के लाभ :

- ध्यान चित्त को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करने की क्षमता प्रदान करती है।
- यह ध्येय वस्तु के पूर्ण एवं स्पष्ट स्वरुप का दर्शन कराती है।
- ध्यान के अभ्यास से विषयों के प्रति राग का अभाव हो जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- ध्यान के द्वारा ज्ञेय विषयक ज्ञान एकसमान बना रहता है।
- चित्त(मन, बुद्धि) स्थिरता को प्राप्त करती है।
- ध्यान के अभ्यास से मन एकाग्र तथा निरुद्ध अवस्था अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि की ओर प्रवृत्त होता है।
- ध्यान कैवल्य (ज्ञान-प्राप्ति) में सहायक होती है।

पाठ्य-प्रश्न

3. निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिए।

i. ध्यान को अष्टांग योग में माना जाता है। अंतरंग/बहिरंग

ii. ध्यान में चित्त को लगाया जाता है। श्वास-प्रश्वास नियमन में/ धारणा युक्त विषय में

iii. विषयों के प्रति राग का अभाव होता है। ध्यान में / प्राणायाम में

iv. ध्यान में मन होता है। विषययुक्त/विषयरहित

2.6 सारांश

छात्रो! प्रस्तुत पाठ में आपने अष्टांग योग के बहिरंग आसन का अर्थ एवं उसके विभिन्न प्रकार को देखा। आसन के द्वारा द्वन्द्वादि की समाप्ति, रोगों का नाश होता है और प्राणायाम, धारणा इत्यादि के लिए चित्त को तैयार करता है। प्राण अर्थात् वायु शरीर को संचालित करती है और नियमन करती है। प्राणायाम के द्वारा श्वास-प्रश्वास पर नियंत्रण स्थापित होता है। प्राणायाम के अभ्यास से धारणा विकसित होती है और उसी धारणा की हुई वस्तु पर केन्द्रित होना ध्यान कहलाता है। ध्यान करने से मन एकाग्र तथा ब्रह्म के स्वरुप से तद्रूपाकार होने वाला हो जाता है। इस प्रकार आपने आसन, प्राणायम तथा ध्यान के महत्त्व, प्रभाव तथा लाभ से परिचित हुए और इसके अभ्यास प्रक्रिया को व्यवहारिक जीवन में करने के लिए प्रेरित हुए।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

स्थैर्य – स्थिरता

लाघव – सूक्ष्मता

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आरोग्य – रोग से मुक्त

प्रयत्न – प्रयास

शैथिल्य – शिथिलता, ढीलापन

क्षीयते – नष्ट होना

आवरण – ढकना

2.8 पाठ्य-प्रश्नों के उत्तर

1. i. महर्षि पतञ्जलि ii. आसन iii. स्वामी स्वात्माराम iv. स्थिर, सुख 2. i. सही ii. गलत iii. गलत iv. सही	3. i. अंतरंग ii. धारणायुक्त विषय में iii. ध्यान iv. विषय रहित

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. आसनों के प्रकार को बताते हुए इसके महत्त्व पर निवन्ध लिखिए।
2. प्राणायाम के प्रभाव को विश्लेषण कीजिए।
3. अष्टांग योग में ध्यान के लाभ को रेखांकित कीजिए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2.10 संदर्भ ग्रंथ

- सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, *आसन, प्राणायाम मुद्रा बन्ध*, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2004.
- Vivekananda, Swami(comm.), *Patanjali Yogsutras*, Rajyoga.

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- भारती, परमहंस स्वामी अनन्त, *योग दर्शन*, चौखम्भा ओरियन्टालिया, नई दिल्ली,
- पाण्डेय, राजकुमारी, *भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम*, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1993.
- Saraswati, Omanand Swami, *Patanjali Yog Pradeep*, Gita Press, Gorakhpur, 2013.
- Swami Sivananda, Angellis, David De (Ed.), *Science of Pranayam*, All Rights Reserved, 2019.
- Shastri, Udayveer, *Patanjali-Yoga darshanam*, Govindram Hansanand Publication, Delhi.

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ–3 इकाई–II

पतञ्जलिकृत योगसूत्र का सामान्य परिचय एवं समाधिपाद के प्रथम दो सूत्र

डॉ. अजित कुमार (संस्कृत विभाग)
असिस्टेंट प्रोफेसर, लेडी श्रीराम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संरचना

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति तथा परिभाषा
3.4 योगदर्शन की प्राचीन परम्परा
3.5 महर्षि पतञ्जलि : एक परिचय
3.6 पतञ्जलिकृत योगसूत्र का संक्षिप्त परिचय
    3.6.1 समाधिपाद
    3.6.2 साधनपाद
    3.6.3 विभूतिपाद
    3.6.4 कैवल्यपाद
3.7 योगसूत्र के व्याख्याकार
3.8 समाधिपाद का प्रथम सूत्र
3.9 समाधिपाद का द्वितीय सूत्र
3.10 योग के लाभ एवं प्रभाव
3.11 सारांश
3.12 पारिभाषिक शब्दावली
3.13 सन्दर्भ-ग्रन्थ
3.14 बोध-प्रश्न एवं अभ्यास-प्रश्न

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप–

- योगदर्शन की प्राचीन परम्परा अथवा पृष्ठभूमि से परिचित होंगे।
- योगदर्शन के प्राणस्वरूप 'योगसूत्र' के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि का परिचय प्राप्त करेंगे।
- योगसूत्र के अध्यायक्रम अनुसार उनकी विषयवस्तु और योगसूत्र के प्रमुख सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
- योगसूत्र के प्रथम दो सूत्रों में वर्णित योगदर्शन के प्रतिपाद्य विषय एवं योग के वास्तविक स्वरूप को जान पायेंगे।
- योग के वास्तविक स्वरूप एवं परिभाषा से परिचित होंगे।
- चित्त की भूमियों के अन्तर्गत सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि को जान पाएँगे।
- चित्त अथवा मन की वृत्तियों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- योग का सर्वांगीण क्षेत्रों में प्रभाव और महत्त्व को समझ पाएँगे।

3.2 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो, पूर्व इकाई में आपने भारतीय प्राचीन योग परम्परा को समझा। षड्दर्शनों में योगदर्शन के महत्त्व को जाना। साथ ही आसन, प्राणायाम एवं ध्यान के प्रभाव व महत्त्व को भी सूक्ष्मतया समझ पाये। अब इस पाठ में आप योगदर्शन के अति गंभीर ग्रन्थ योगसूत्र में वर्णित योगविषयक चिंतन को पढ़ेंगे। वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, पुराणों एवं स्मृति ग्रन्थों में अनेकशः योगशास्त्र विषयक उल्लेख मिलता है। महर्षि पतञ्जलि इस दर्शन के प्रणेता आचार्य हैं, जिन्होंने 'योगसूत्र' नामक अद्वितीय ग्रन्थ की रचना कर योगदर्शन की प्राणप्रतिष्ठा की है। चूँकि योगसूत्र का थोड़ा-सा अंश आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया है, इस दृष्टि से आप इस पाठ के अन्तर्गत योगदर्शन की प्राचीन परम्परा एवं पतञ्जलि प्रणीत योगसूत्र विषयक सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे। साथ ही योगसूत्र के प्रथम दो सूत्रों में वर्णित योग की परिभाषा व स्वरूप के विषय में क्या बताया गया है? योग-साधक की विभिन्न स्थितियाँ तथा विभूतियाँ कौन-कौन सी हैं? चित्त की वृत्तियाँ किसे कहा गया है? चित्तवृत्तियों को रोकने के क्या-क्या उपाय हैं? अष्टांग योग किसे कहा है? इत्यादि यौगिक विषयों का भी सामान्य परिचय प्रस्तुत पाठ में प्राप्त करेंगे। योग से होने वाले लाभ व महत्त्वपूर्ण प्रभावों का भी यथास्थान विवेचन किया गया है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

3.3 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति तथा परिभाषा

'योग' शब्द की व्युत्पत्ति– योग शब्द दिवादिगण में पठित 'यज् समाधौ' धातु से घञ् प्रत्यय जोड़ने पर निष्पन्न होता है, जिसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है–समाधि अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग कहलाता है। पाणिनि आचार्य के अनुसार यद्यपि युज् धातु दो अन्य अर्थों 'युजिर् योगे' एवं 'युज् संयमने' में भी प्रयुक्त होती है तथापि योगसूत्र में 'योग' शब्द का अर्थ समाधि अथवा चित्त की वृत्तियों को रोकना ही स्वीकार किया गया है।

योग की परिभाषा– अत्यन्त सरल शब्दों में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि मन के समस्त विचारों–चिन्ता, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान आदि को रोककर उसे अभीष्ट ध्येय आत्मा से जोड़कर इसके (आत्मा के) यथार्थ स्वरूप को जानना तथा ईश्वर का साक्षात्कार करना ही योग है।

3.4 योगदर्शन की प्राचीन परम्परा

'शासन' उपदेश अथवा शिक्षा को कहते हैं तथा 'अनुशासन' उसे कहते हैं, जिस विषय का 'शासन' (उपदेश) पहले से चला आ रहा है। इसलिए महर्षि पतञ्जलि ने योग-शिक्षा का प्राचीन परम्परा से चला आना बतलाया है, जिसका वर्णन उपनिषदों एवं स्मृतियों में पाया जाता है–

1. **उपनिषदों के अनुसार**– (i) छान्दोग्योपनिषद में कहा है–

   हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकोश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः। (छान्दो. 1.6.6)

   अर्थात् यह सुवर्णमय पुरुष जो सूर्य के अन्दर दिखाई देता है, जिनकी सुनहरी दाढ़ी-मूँछें और सुनहरे बाल हैं। जो नख से सिर तक सारा ही सुवर्णमय है।

   (ii) श्वेताश्वेतरोपनिषद् में कहा है–

   प्राणान् प्रपीडयेह संयुक्तचेष्टः क्षीणं प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।।2.9।।

   शरीर की सभी प्रकार की हलचल को वश में करके प्राणों को रोकें और प्राण के क्षीण (हल्का) होने पर नासिका से श्वास लें।

2. **पुराण के अनुसार**– श्रीमद्भागवत पुराण में इस विषय में कहा है–

   इदं हि योगेश्वर योगेनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत्। (5/19/13)

   हे योगेश्वर! यह वही योगकौशल है, जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा था। हिरण्यगर्भ किसी भौतिक मनुष्य का नाम नहीं है, अपितु ब्रह्म का वाचक है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3. **महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार–**

हिरण्यगर्भ– हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः। (याज्ञवल्क्य)

हिरण्यगर्भ ही योग के आदि वक्ता हैं, इनसे प्राचीन और कोई नहीं है। इस प्रकार के वचनों से श्री याज्ञवल्क्य ऋषि ने हिरण्यगर्भ को योग का आदि वक्ता अर्थात् प्रथम गुरु कहा है।

4. **महाभाष्यकार के अनुसार–** महाभाष्यकार ने भी माना है–

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ।। (महाभा. 12/349/65)

सांख्य के वक्ता कपिलाचार्य परमर्षि कहलाते हैं और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ हैं।

5. **महाभारत के अनुसार–** महाभारत में कहा है–

हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतः।
महानिति च योगेषु विरञ्चीति तथाप्यजः।।

इन हिरण्यगर्भ भगवान को बुद्धि कहते हैं। इन्हीं को योगी लोग महान् तथा अज (अजन्मा) भी कहते हैं।

योग का स्थान– श्वेताश्वेतरोपनिषद् (2.10) में कहा है- ऐसे स्थान पर योग का अभ्यास करना चाहिए, जो शब्द, जलाशय और लता आदि से मन के अनुकूल हो, आँखों को पीड़ा देने वाला न हो, एकान्त और वायु के झोंकों से रहित हो।

योग का फल – लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ।। छान्दो. 2.13।।

अर्थात् शरीर हल्का हो जाता है, आरोग्य रहता है, विषयों की लालसा मिट जाती है, कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है, गन्ध शुद्ध होता है और मल-मूत्र थोड़ा होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय का नाम ध्यान योग है। चित्त को एकाग्र कैसे करें? चित्त एकाग्रता की विधि कही है–

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।। गीता 6.10।।

योगी को चाहिए कि एकान्त में अकेला बैठकर, अपने चित्त तथा आत्मा को वश में करके, वासना से रहित होकर, परिग्रह (संग्रह) की भावना को छोड़कर अपने मन परमात्मा के साथ लगातार जोड़े।

योगाभ्यास में शरीर की स्थिति– श्रीमद्भगवदगीता में इस विषय में कहा है–

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।।6.13।।

अपनी पीठ, सिर और गर्दन को सीधा अर्थात् एक सीध में तथा अचल और स्थिर होता हुआ, नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य किसी दिशा में न देखते हुए योगी मुझ (भगवान) में स्थित रहने वाली तथा परनिर्वाण को देने वाली शान्ति को प्राप्त होता है।

ओ३म् का महत्त्व–

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।। गीता 8.13

जो पुरुष 'ओ३म्' इस एक अक्षर रूपी ब्रह्म का उच्चारण और मेरा चिन्तन करता हुआ देह का त्याग करता हुआ संसार से प्रयाण करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है। यही भावना हमें योगसूत्र में प्राप्त होती है– **'तस्य वाचकः प्रणवः'** तथा **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** (यो.द. 1.27-28)। परन्तु योग की इस प्रक्रिया को अन्त समय में वही कर सकता है जिसने जीवनकाल में इसका अच्छी प्रकार से अभ्यास कर लिया है।

3.5 महर्षि पतञ्जलि : एक परिचय

योगदर्शन के रचनाकार महर्षि पतञ्जलि का समय क्या है? यह निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के अधिकांश इतिहास के नष्ट हो जाने से कालनिर्णय विषयक प्रमाणों का अभाव ही मिलता है। महर्षियों की ऐसी परम्परा रही है कि वे अपने समय तथा जीवन के विषय में कहीं कुछ नहीं लिखते थे। इस कारण से भी उनके समय के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है। फिर भी कुछ उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यहाँ लिखा जा रहा है। कुछ विद्वानों का मानना है कि व्याकरणमहाभाष्य, वैद्यक की चरकसंहिता और योगदर्शन के प्रणेता एक ही पतञ्जलि हैं। ऐसे लोग परम्परा के आश्रय से निम्न श्लोक को उद्धृत करते हैं–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य तु वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ।।

अर्थात् योगशास्त्र के द्वारा चित्त (मन) के, वैधक (आयुर्वेद) के द्वारा शरीर के और व्याकरणमहाभाष्य के द्वारा वाणी के मलों को दूर किया है, ऐसे उस मुनिवर पतञ्जलि को मैं नमस्कार करता हूँ।

इस पक्ष को मानने वाले यह भी कहते हैं कि महाभाष्य में **'अथ शब्दानुशासनम्'** तथा योगदर्शन के **'अथ योगानुशासनम्'** सूत्रों के एकरूपता देखकर भी दोनों के प्रारम्भ करने वाले एक ही ऋषि प्रतीत होते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

परन्तु यह नाम की समानता से ही भ्रान्ति प्रतीत होती है। क्योंकि महर्षि वेदव्यास का समय पाणिनि से पूर्व था और योगदर्शन के प्रणेता पतञ्जलि उससे भी पूर्व हुए।

महर्षि वेदव्यास ने वेदान्तसूत्रों तथा महाभारत की रचना की है और योगसूत्रों पर भाष्य भी लिखा है। इससे स्पष्ट है कि योगदर्शन की रचना व्यास से पूर्व की है और व्याकरणमहाभाष्य तथा चरक संहिता की रचना बहुत समय के बाद हुई है। अत: परवर्ती ग्रन्थों की रचना किसी परवर्ती पतञ्जलि ने की है, जो योगदर्शन के कर्ता से भिन्न हैं।

3.6 पतञ्जलि कृत योगसूत्र का संक्षिप्त परिचय

योगसूत्र महर्षि पतञ्जलि द्वारा रचित ग्रन्थ है, इसमें चार पाद हैं। समाधि-पाद में 51 सूत्र हैं। साधन-पाद तथा विभूति-पाद में 55+55 (110) सूत्र हैं एवं कैवल्यपाद में मात्र 34 सूत्र हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण योगसूत्र के चारों पादों में मात्र 195 सूत्र हैं। आकार की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त लघु है परन्तु जीवन में इस ग्रन्थ का सबसे अधिक महत्त्व है। इसका विभाजन चार पादों में किया गया है–

3.6.1 समाधिपाद–जिस प्रकार एक कुशल किसान (क्षेत्रज्ञ) सबसे पहले अधिक उपजाऊ भूमि को तैयार करके उसमें सबसे उत्तम बीज बोता है, ठीक उसी प्रकार महर्षि पतञ्जलि ने एकाग्र (समाहित) चित्त (मन) वाले सबसे श्रेष्ठ योग के अधिकारियों के लिए सर्वप्रथम समाधिपाद को रखकर उसमें विस्तारपूर्वक योग के स्वरूप का वर्णन किया है।

सम्पूर्ण समाधिपाद एक प्रकार से निम्न तीन सूत्रों की विस्तृत व्याख्या ही है–

प्रथम- **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः** ।।1.2।।

चित्त (मन) की वृत्तियों (विचारों) को रोकना-योग है।

द्वितीय- **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्** ।।1.3।।

तब (वृत्तियों के रूक जाने पर) द्रष्टा (आत्मा) अपने स्वरूप में आ जाता है।

तृतीय- **वृत्तिसारूप्यमितरत्र** ।।1.4।।

दूसरी (आत्मस्वरूप से भिन्न) अवस्था में द्रष्टा (आत्मा) वृत्ति के सदृश रूपवाला हो जाता है।

चित्त, बुद्धि, मन, अन्त:करण लगभग पर्यायवाचक समानार्थ शब्द हैं, जिनका प्रयोग अलग-अलग दर्शनों में प्राप्त होता है। मन की चञ्चलता सभी स्वीकार करते हैं। संसार के सभी कार्यों में मन की स्थिरता ही सफलता का कारण होती है। दुनिया के सभी महापुरुषों की अद्‌भुत शक्तियों में उनके मन की एकाग्रता का रहस्य छिपा हुआ है। नेपोलियन के विषय में कहा जाता है कि वह इतना

© DDCE/COL/SOL University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

एकाग्रचित्त था कि रणभूमि में भी सुखपूर्वक सो सकता था, परन्तु यह एकाग्रता का बाह्यरूप है।

योगदर्शन में मन को रोकने के दो चरण हैं- प्रथम तो मन को केवल एक विषय में लगातार इस प्रकार लगाये रखना कि दूसरा विचार आने ही न पावे, इसको एकाग्रता अथवा **सम्प्रज्ञात–समाधि** कहते हैं।

इसके चार भेद हैं–

1. **वितर्क** – किसी स्थूल विषय में चित्तवृत्ति (मन) की एकाग्रता।
2. **विचार** – किसी सूक्ष्म विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।
3. **आनन्द** – अहंकार विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।
4. **अस्मिता** – अहंकार रहित अस्मिता (आत्म) विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।

अस्मिता बुद्धि और आत्मा का वह सम्मिलन है, जिसमें वे एक रूप प्रतीत होते हैं।

दूसरी अवस्था इन चारों से उत्कृष्ट अवस्था विवेकख्याति (आत्मज्ञान) है, जिसमें चित्त का आत्मा से पृथक् रूप में साक्षात्कार होता है, परन्तु योगदर्शन इसको वास्तविक आत्मस्थिति नहीं मानता है। यह भी चित्त की ही एक वृत्ति अथवा मन का ही एक विषय है, किन्तु इसका निरन्तर अभ्यास वास्तविक स्वरूपावस्थिति में सहायक होता है। यह विवेकख्याति भी चित्त की ही एक उच्चतम सात्विक वृत्ति है। यह वास्तविक स्वरूपावस्थिति नहीं है। इसके भी हट जाने पर चित्त में किसी भी वृत्ति का न रहना अथवा मन का किसी विषय की ओर न जाना, इस स्थिति को सर्ववृत्ति–निरोध **असम्प्रज्ञात–समाधि** कहते हैं।

निरोध अपने स्वरूप का सर्वथा नाश हो जाना नहीं है, किंतु जड़तत्त्व (प्रकृति) के अविवेकपूर्ण संयोग का चेतनतत्त्व (आत्मा) से सर्वथा नाश हो जाना है। इस संयोग के न रहने पर द्रष्टा (आत्मा) की (शुद्ध परमात्म) स्वरूप में अवस्थिति होती है। इसको तृतीय सूत्र में बतलाया गया है। स्वरूपावस्थिति से भिन्न अवस्थाओं में यद्यपि द्रष्टा के स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है, तथापि जैसी चित्त की वृत्ति सुख–दुःख और मोहरूप होती है, वैसा ही द्रष्टा भी प्रतीत होता है। जैसे जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा जल के हिलने से चलायमान और स्थिर होने से शान्त प्रतीत होता है।

ईश्वर का स्वरूप (समाधि–पाद)–योगदर्शन में इसी समाधि–पाद में महर्षि पतञ्जलि ने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का व्याख्यान विशेष रूप से वर्णित किया है। योगियों को परमात्मा के साक्षात्कार के लिए अभ्यास, वैराग्य आदि उपायों के अतिरिक्त ईश्वर की भक्ति–विशेष करके ईश्वर की कृपा का पात्र बनना भी आवश्यक है। इसलिए साधक को ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानना तथा उसकी महानता को पूर्णरूप से स्वीकार करना चाहिए। ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

तथा उसकी महत्ता को स्वीकार किए बिना मुक्ति संभव नहीं हो सकती।

निम्न सूत्र में ईश्वर के स्वरूप का लक्षण करते हैं–

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः ।।1.24।।

जो अविद्यादि पाँच क्लेश और अच्छे-बुरे कर्मों की जो-जो वासना है, जो इन सबसे अलग और बन्धनरहित है, उसी पुरुष-विशेष को ईश्वर कहते हैं।

अगले सूत्र में ईश्वर की सर्वज्ञता सिद्ध की है–

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।।1.25।।

उस ईश्वर में उच्चतम सर्वज्ञता का मूल है अर्थात् उससे अधिक कोई जानने वाला नहीं, वही सबको जानने वाला है। उसको सम्पूर्णतया जानने वाला कोई नहीं है। वह ईश्वर गुरुओं का भी गुरु है–

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।।1.26।।

वह ईश्वर पूर्व में उत्पन्न हुए ब्रह्मादि का भी गुरु है, क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न (समय की सीमा में) नहीं है। ईश्वर के स्वरूप का निरूपण करके अब उसकी उपासना कैसे करनी चाहिए, यह बतलाने के लिए उसका नाम बताते हैं–

तस्य वाचकः प्रणवः ।।1.27।।

उस ईश्वर का नाम (वाचक) ओ३म् (प्रणव) है। अब उस ईश्वर की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए, आगे लिखते हैं–

तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।1.28।।

उस 'ओ३म्' का जप और उसी के अर्थ की भावना करनी चाहिए। क्योंकि इससे भिन्न नाम परमेश्वर और अन्य पदार्थों के भी हैं, अतः वे नाम गौण हैं।

अब प्रश्न उठता है कि ईश्वर-भक्ति ओ३म् के जाप से साधक को क्या लाभ होता है, तो ऋषि इसका उत्तर देते हैं–

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।।1.29।।

अर्थात् उस ईश्वर भक्ति से परमात्मा की प्राप्ति और अविद्यादि क्लेशों तथा रोगरूप बाधाओं का नाश हो जाता है।

3.6.2 साधनपाद–द्वितीय पाद में चञ्चल (विक्षिप्त) चित्तवाले मध्यम अधिकारियों के लिए योग के उपाय (साधन) बताए गए हैं। सभी प्रकार के बन्धनों के पाँच मूल कारण हैं, जिन्हें क्लेश कहा है- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अनात्मा को आत्मा समझना अविद्या है। इस अविद्या से ही अन्य चारों क्लेश उत्पन्न होते हैं। इन क्लेशों से छूटने के उपाय अष्टाङ्ग योग के रूप में इस साधनपाद में वर्णित हैं। योग के अङ्गो के अनुष्ठान से अशुद्धि के नष्ट होने पर ज्ञान का प्रकाश बढ़ जाता है। अष्टाङ्ग योग क्या है, निम्न प्रकार से दृष्टव्य है–

अष्टाङ्ग योग

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।।2.29।।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि- ये योग के आठ अङ्ग कहलाते हैं।

(1) यम के भेद- अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।2.30।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- ये पाँच यम होते हैं।

- **अहिंसा**- शरीर, वाणी तथा मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि की मानसिकता के साथ किसी भी प्राणी को शारीरिक, मानसिक पीड़ा पहुँचाना हिंसा है, इससे बचना अहिंसा है।
- **सत्य**- **'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे'** जो पदार्थ (वस्तु) जैसा हो उसके सम्बन्ध में वैसी ही वाणी और वैसे ही मन का होना-सत्य कहलाता है अर्थात् जैसा देखा, जैसा सुना तथा जैसा जाना हो, वैसा ही मन और वाणी का व्यवहार सत्य कहाता है। दूसरों के लिए ऐसी वाणी कभी नहीं बोलना, जिसमें छल-कपट हो, भ्रम पैदा होता हो, जिससे किसी प्राणी को दु:ख पहुँचे। दूसरों की हानि करने वाली वाणी पापमयी होने से दु:खजनक होती है, इसलिए अच्छी प्रकार परीक्षा करके सभी प्राणियों के हितार्थ सत्य बोलें। मनुस्मृति में लिखा है- **'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्'।** सत्य बोलें, प्रिय बोलें, ऐसा सत्य न बोलें, जो अप्रिय हो अर्थात् सत्य को मीठा करके बोले, कटु करके न बोले।
- **अस्तेय**- चोरी न करना। दूसरे की वस्तु पर बिना पूछे अधिकार करना अथवा शास्त्रविरुद्ध ढंग से वस्तुओं का ग्रहण करना स्तेय (चोरी) कहलाता है। दूसरे की वस्तु के ग्रहण करने की लालसा भी चोरी है। अत: योगी को इस दुष्प्रवृत्ति का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।
- **ब्रह्मचर्य**- मैथुन तथा अन्य किसी भी प्रकार से वीर्य का नाश न करते हुए जितेन्द्रिय होना अर्थात् अन्य सब इन्द्रियों के निरोधपूर्वक मैथुन-क्रिया के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- **अपरिग्रह**- धन, सम्पत्ति, भोग-सामग्री अथवा अन्य वस्तुओं को अपनी (शरीर-रक्षा आदि) आवश्यकताओं से अधिक केवल अपने ही भोग के लिए स्वार्थ-दृष्टि से संचय या इकट्‌ठा करना परिग्रह है, इससे बचना अपरिग्रह है।

(2) नियम- शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।2.32।।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान- ये नियम हैं।

- **शौच**– इसका अर्थ है– शुद्धि अथवा पवित्रता। यह शुद्धि बाह्य और आन्तरिक दो प्रकार से होती है। एक मिट्‌टी, जलादि के द्वारा शरीर की शुद्धि वस्त्र आदि को शुद्ध रखना बाह्यशुद्धि है। दूसरी काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेषादि मानसिक दोषों को दूर करना आन्तरिक शुद्धि है।
- **सन्तोष**– सामर्थ्यानुसार उचित प्रयास के पश्चात् जो फल मिले अथवा जिस अवस्था में रहना हो, उसमें प्रसन्नचित्त बने रहना और सब प्रकार की तृष्णाओं को छोड़ देना संतोष है।
- **तप**– **तपो द्वन्द्वसहनम्।** द्वन्द्वों को सहन करना तप है। जैसे अश्वविद्या में निपुण सारथि चञ्चल घोड़ों को साधता है। वैसे ही शरीर, प्राण, इन्द्रियों और मन को अभ्यास द्वारा वश में करना तप है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख, मान-अपमान में समभाव से रहना तप है।
- **स्वाध्याय**– **स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा।** स्वाध्याय का अभिप्राय है- मोक्ष-प्राप्ति का उपदेश करने वाले वेदादि सत्य-शास्त्रों का अध्ययन करना और ओङ्कारादि पवित्रताकारक मन्त्रों का जप करना है।
- **ईश्वर-प्रणिधान**– ईश्वर की भक्ति-विशेष अर्थात् फलसहित सभी कर्मों को ईश्वर को समर्पित करना ईश्वर-प्रणिधान है। ईश्वर-प्रणिधान से अभिमान आदि दोषों की निवृत्ति तथा विनय आदि सद्‌गुणों की वृद्धि होती है।

  ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह का पालन करें। जितेन्द्रिय शुद्ध मन वाला योगी स्वाध्याय, शौच, सन्तोष और तप का परब्रह्म में समर्पण करे।

(3) आसन– स्थिरसुखमासनम्।।2.46।।

जो स्थिर और सुखदायी हो वह आसन है। हठयोग में अनेक प्रकार के आसन हैं, जो शरीर को स्वस्थ, हल्का और योग-साधना के योग्य बनाने में सहायक होते हैं। परन्तु यहाँ उन आसनों से अभिप्राय है, जिनमें सुखपूर्वक अधिक से अधिक समय तक ध्यान लगाकर बैठा जा सके। जैसे- स्वस्तिकासन, सिद्धासन, पद्‌मासन, वीरासन, वज्रासन, गोमुखासन आदि। जो

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

योगाभ्यासी जिस आसन में आराम से अधिक देर तक बैठ सके, वह उसको ग्रहण करे।

(4) **प्राणायाम– तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।।2.49।।**

आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। **श्वास**–बाहर की वायु को नासिका द्वारा अन्दर ले जाना श्वास कहलाता है। **प्रश्वास**– अन्दर की वायु का नासिका द्वारा बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है। प्राणायाम मुख्य तीन भेद हैं- रेचक, पूरक तथा कुम्भक।

1. **रेचक**– श्वास को बाहर निकालकर उसकी स्वाभाविक गति को रोकना रेचक प्राणायाम कहलाता है।
2. **पूरक**– श्वास को अंदर खींचकर उसकी स्वाभाविक गति को रोकना पूरक प्राणायाम होता है।
3. **कुम्भक**– श्वास-प्रश्वास दोनों प्राणों की गतियों को एकदम जहाँ का तहाँ रोकना कुम्भक प्राणायाम है।

(5) **प्रत्याहार– स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इव इन्द्रियाणां प्रत्याहार: ।।2.54।।**

इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण (नकल) जैसा करना प्रत्याहार है। प्रत्याहार का अर्थ है– पीछे हटना, विपरीत होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रियाँ अपने बहिर्मुख विषयों से पीछे हटकर अन्तर्मुख होती हैं। चित्त (मन) जब बाहर के विषयों से विरक्त होकर एकाग्र होने लगता है, तब इन्द्रियाँ भी अन्तर्मुख होकर उस जैसा अनुकरण करने लगती हैं। यही प्रत्याहार है।

यहाँ तक योग के प्रथम पाँच अङ्गों का वर्णन साधन पाद में किया है परन्तु अन्तिम तीन को अगले विभूति पाद में किया गया है तथापि उन तीनों का भी संक्षिप्त विवरण प्रसङ्गवश यहाँ देना आवश्यक है।

(6) **धारणा – देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।।3.1।।**

चित्त का वृत्तिमात्र से किसी स्थान विशेष में बांधना 'धारणा' कहलाता है। चित्त को शरीर के किसी नाभिचक्रादि अङ्ग-विशेष में बाँध देने, रोकने या स्थिर करने का अभ्यास करना धारणा कहलाती है।

(7) **ध्यान – तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।3.2।।**

जिस स्थान पर धारणा की हुई है उसी स्थान पर ज्ञेय (जानने योग्य) विषयक ज्ञान का एक समान बना रहना अर्थात् ज्ञेय विषयक ज्ञान से अलग ज्ञान को न उभरने देना 'ध्यान' है।

(8) **समाधि – तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि: ।।3.3।।**

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

वह ध्यान ही समाधि कहलाता है, जब उसमें केवल ध्येय (लक्ष्य) अर्थमात्र से दिखाई देता है और उसका (ध्यान का) स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है।

उपर्युक्त आठ अङ्गो में से पहले पाँच योग के बहिरङ्ग साधन कहलाते हैं। अन्तिम तीन धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरङ्ग साधन हैं, क्योंकि जिस विषय में समाधि लगायी जाती है, वे उसी को लेकर चलते हैं, किन्तु ये तीनों भी असम्प्रज्ञात समाधि के प्रति बहिरङ्ग साधन हैं। उसका अन्तरङ्ग साधन परवैराग्य है, जिसके द्वारा आत्मा को चित्त से भिन्न साक्षात् करानेवाली विवेकख्यातिरूप सात्विक वृत्ति, जो अष्टाङ्गयोग की सीमा है, उसका भी निरोध होकर शुद्ध परमात्मस्वरूप में अवस्थिति होती है।

3.6.3 विभूतिपाद– इस पाद में धारणा, ध्यान तथा समाधि- इन तीनों अङ्गों के लक्षण, शास्त्रीय पारिभाषिक नाम, उनकी सिद्धि का फल तथा विभिन्न स्तरों में विनियोग, मोक्ष की प्राप्ति में सभी सिद्धियों की आवश्यकता का निषेध, चित्त परिणामों के भेद और उनका विवरण, संयम के अनुष्ठान से विविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति पर प्रकाश डाला गया है।

धारणा, ध्यान और समाधि- तीनों मिलकर संयम कहलाते हैं। ये तीनों अन्य पाँच अङ्गों की अपेक्षा सबीज समाधि के अन्तरङ्ग साधन हैं, किन्तु निर्बीज समाधि के ये बहिरङ्ग साधन हैं, क्योंकि उसका अन्तरङ्ग साधन पर वैराग्य है। इस संयम से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जिनका इस विभूति (विशेष ऐश्वर्य) पाद में वर्णन है। ये सिद्धियाँ यद्यपि अश्रद्धालुओं की योग में श्रद्धा बढ़ाने और असमाहित (विक्षिप्त) चित्तवालों के चित्त को एकाग्र करने में सहायक होती हैं, किंतु इनमें आसक्ति नहीं होनी चाहिए। इसके लिए कई सूत्रों में सावधान किया गया है। जैसे–

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने तु सिद्धयः ।।3.37।।

ऊपर कही गई प्रातिभ आदि सिद्धियाँ व्युत्थान में सिद्धियाँ हैं, किन्तु समाधि में विघ्न है।

3.6.4 कैवल्यपाद– योगदर्शन के पूर्व के तीन पादों में क्रमशः समाधि का स्वरूप, समाधि प्राप्ति के साधन और समाधि से होने वाली विभूतियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। अब इस चतुर्थ पाद में समाधि के फलस्वरूप कैवल्य का स्वरूप बताया गया है अर्थात् मोक्ष के यथार्थ स्वरूप का वर्णन है।

3.7 योगसूत्र के व्याख्याकार

योगसूत्र पर अनेक भाष्य, वृत्तियाँ और टीकाएँ लिखी गई हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय है–

व्यासभाष्य–योग-सूत्रों पर सबसे प्राचीन एवं प्रामाणिक महर्षि व्यास का संस्कृत-भाष्य उपलब्ध होता है। व्यास-भाष्य स्वयं बहुत ही गूढ़ार्थ है। इस भाष्य को योगभाष्य, पातञ्जल भाष्य आदि नामों से भी जाना

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

जाता है। योगसूत्र के भाष्यकार व्यास का ठीक–ठीक समय निश्चित करना कठिन है। कुछ विद्वानों का मत है कि ब्रह्मसूत्रकार व्यास ही योगसूत्र का भाष्य करने वाले व्यास हैं। योगसूत्र के प्रथम वार्तिक में विज्ञानभिक्षु ने भी ब्रह्मसूत्रकार बादरायण को ही योगसूत्र का भाष्यकार व्यास बतलाया है।

तत्त्ववैशारदी–ऋषियों के रहस्य को ऋषि ही अधिक सूझकर यथार्थ व्याख्या कर सकते हैं, इसलिए उसके अर्थ को समझने के लिए वाचस्पति मिश्र ने तत्त्ववैशारदी और विज्ञानभिक्षे ने योगवार्तिक की रचना की है।

योगसार–विज्ञानभिक्षु ने एक अलग ग्रन्थ 'योगसार' में योग के सिद्धान्तों का सार रूप में संग्रह किया है। वृत्तियों में 'राजमार्तण्डवृत्ति' जिसका प्रसिद्ध नाम 'भोजवृत्ति' है, अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रामाणिक है। गणेश भट्ट की एक बड़ी वृत्ति योगवार्तिक के आधार पर निर्मित हुई है।

3.8 समाधिपाद का प्रथम सूत्र

सूत्र–अथ योगानुशासनम् ।।1.1।।

सूत्रार्थ– **(अथ)** अब आरम्भ करते हैं **(योग–अनुशासनम्)** योग की शिक्षा देने वाले ग्रन्थ का अर्थात् अब योग की शिक्षा प्रदान करने वाले ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं।

व्याख्या– पतञ्जलि ने व्याकरण महाभाष्य में 'अथ' शब्द का प्रयोग अधिकार अर्थ में किया है–**''अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते''**। अधिकार का अर्थ है– प्रस्तुतीकरण, आरम्भ, मङ्गलार्थक। अनुशासन–**''अनुशिष्यतेऽनेनेत्यनुशासनम्''** इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'अनुशासन' शब्द योगशास्त्र का पर्यायवाची है।

योगस्यानुशासनं (शास्त्रम्) योगानुशासनम्– इस समास से यह शब्द योगशास्त्र का पर्यायवाची शब्द है। इस प्रकार 'अथ योगानुशासनम्' का अर्थ है– अब लक्षण, भेद, उपाय और फलों सहित योग की शिक्षा देने वाले शास्त्र का प्रारम्भ (प्रस्तुतीकरण) करते हैं।

योग समाधि को कहते हैं और समाधि सभी भूमियों (अवस्थाओं) में चित्त का धर्म (गुण) है। जो चित्त तीन भूमियों (अवस्थाओं) में दबा रहता है। केवल दो भूमियों में प्रकट होता है।

चित्तभूमि (अवस्थाएँ)– चित्त की पाँच अवस्थाएँ (भूमियाँ) हैं– मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध। इनमें से अत्यन्त चञ्चल चित्त को क्षिप्त कहते हैं और निद्रा, तन्द्रा, आलस्यादि वाले चित्त को मूढ़ कहते हैं। जिस चित्त की अवस्था में कभी–कभी स्थिरता होती रहती है, उसको विक्षिप्त अवस्था कहते हैं। चित्त की क्षिप्त और मूढ़ अवस्था में तो योग का अंशमात्र भी नहीं रहता है। विक्षिप्त चित्त में कभी–कभी कुछ क्षण के लिए स्थिरता होती है, परन्तु उसकी भी योग में गणना नहीं की जाती है क्योंकि यह स्थिरता दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रहती, शीघ्र ही चञ्चलता की प्रबलता से चित्त की स्थिरता समाप्त हो जाती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इसलिए विक्षिप्त अवस्था (भूमि) को भी योग की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। जिसका एक ही प्रमुख विषय हो अर्थात् एक ही विषय में (बीच-बीच में आने वाले अन्य विषयों के व्यवधान से रहित) सदृश वृत्तियों के प्रवाह वाले चित्त को एकाग्र कहते हैं। चित्त की यह एकाग्र स्थिति ध्येय वस्तु (पदार्थ) का पूर्णरूप से साक्षात्कार कराती है, अविद्यादि क्लेशों को निर्बल कर देती है। कर्मसंस्कारों के बन्धनों को, कर्मों के बन्धनों को दृढ़ बनानेवाली वासनाओं को ढीला कर देती है और निरोधरूप चित्त की अन्तिम अवस्था को प्राप्त कराने में सहायक होती है। जिसे संप्रज्ञात योग कहते हैं। इसके चार भेद हैं- वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत। इन भेदों के विषय में इस पाद के सत्रहवें सूत्र में विस्तार से चर्चा होगी। पुनः सर्ववृत्तियों के निरोधवाले चित्त को निरूद्ध कहते हैं। उस निरूद्ध चित्त में असम्प्रज्ञात समाधि होती है, उसी को असम्प्रज्ञात योग कहते हैं।

3.9 समाधिपाद का द्वितीय सूत्र

योग का स्वरूप एवं परिभाषा

सूत्र – योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।।1.2।।

प्रसङ्ग– इस सूत्र में योग की परिभाषा दी गई है।

सूत्रार्थ– **(योगः)** योग है, **(चित्तवृत्ति-निरोधः)** चित्त की वृत्तियों को रोकना अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना (रुक जाना) योग (समाधि) है।

व्याख्या– इस सूत्र में योग के स्वरूप का वर्णन किया है अर्थात् योग की परिभाषा दी गई है। चित्त (मन) में विभिन्न विचार या भाव सदैव उठते रहते हैं, उन विचारों या भावों को चित्त की वृत्तियाँ कहते हैं। निर्मल सत्त्वप्रधान चित्त की जो वृत्तियाँ हैं उनका निरोध अर्थात् जो चित्त की वृत्तियाँ बाहर की ओर अभिमुख होती हैं उन बहिर्मुखी वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर उसके विपरीत अर्थात् अन्तर्मुखी करके अपने कारण चित्त में लीन कर देना योग है।

3.4.1 चित्त की भूमियाँ (अवस्थाएँ)

चित्त तीन प्रकार के स्वभाव वाला है अर्थात् प्रकाशशील, गतिशील और स्थैर्यशील है, अतः त्रिगुणात्मक है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण चित्त के उपादान कारण हैं। चित्त के निर्माण में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, परन्तु उसमें रजोगुण और तमोगुण भी मिश्रित रहते हैं। इन तीनों गुणों के मिश्रण से चित्त की पाँच अवस्थाएँ (भूमियाँ) होती हैं– मूढ, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध अवस्था।

1. **मूढ़ावस्था**–चित्त की इस अवस्था में तमोगुण की प्रधानता होती है, रज तथा सत्त्वगुण गौणरूप से रहते हैं। यह दशा काम, क्रोध, लोभ और मोह के कारण होती है। जब चित्त की ऐसी दशा होती है, तब मनुष्य की प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, राग और अनैश्वर्य में होती है। यह अवस्था नीच मनुष्यों की होती है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

2. **क्षिप्तावस्था**–इस अवस्था में रजोगुण की प्रधानता होती है, तम और सत्त्व दबे हुए गौण रूप से रहते हैं, इसका कारण राग द्वेषादि होते हैं। इस अवस्था में धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य में प्रवृत्ति होती है। यह अवस्था साधारण सांसारिक मनुष्यों की है।
3. **विक्षिप्तावस्था**–इस अवस्था में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, रज तथा तम दबे हुए गौणरूप से रहते हैं। यह अवस्था निष्काम कर्म करने तथा राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ और मोहादि के त्याग से आती है। क्योंकि इस अवस्था में सत्त्वगुण किसी न किसी मात्रा में बना रहता है इसलिए मनुष्य की प्रवृत्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में बनी रहती है। यह अवस्था उच्च प्रवृत्ति के मनुष्यों तथा जिज्ञासुओं की होती है। ये उपर्युक्त तीनों अवस्थाएँ चित्त की स्वाभाविक अवस्थाएँ नहीं हैं और न ही योग के लिए उपयुक्त हैं, क्योंकि बाहरी विषयों का चित्त पर प्रभाव पड़ता है।
4. **एकाग्रावस्था (सम्प्रज्ञान समाधि)**– जब एक ही विषय में समान वृत्तियों का प्रवाह चित्त में निरन्तर बहता रहे, तब उसको एकाग्रता कहते हैं। यह चित्त की स्वाभाविक अवस्था है अर्थात् जब चित्त में रज तथा तम का प्रभाव न रहे, तब वह निर्मल चमकते हुए स्फटिकमणि के सदृश स्वच्छ होता है। उस समय उसमें परमाणु (छोटे से छोटे) से लेकर महत् (बड़े से बड़े) तत्त्व पर्यन्त विषयों का साक्षात् हो सकता है। चित्त की इस एकाग्रता अवस्था को सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं।
5. **निरूद्धावस्था (असम्प्रज्ञान समाधि)**– जब विवेक-ख्याति (विवेकज्ञान) द्वारा चित्त (जड़) और पुरुष (चेतन) के भेद का साक्षात्कार हो जाता है, तब उस ख्याति (ज्ञान) से भी वैराग्य (पर-वैराग्य) का उदय होता है, क्योंकि विवेक-ख्याति भी चित्त की ही एक वृत्ति है। इस वृत्ति के निरूद्ध होने पर सर्ववृत्तियों के निरोध होने से चित्त की अवस्था निरोधावस्था होती है। इस निरोधावस्था में अन्य सब संस्कारों के तिरोभावपूर्वक पर-वैराग्य के संस्कारमात्र शेष रहते हैं। निरोधावस्था में किसी प्रकार की भी वृत्ति न रहने के कारण तथा अविद्यादि पाँचों क्लेशों सहित कर्माशय-रूप जन्मादि के बीज नहीं रहते। इसलिये इसको असम्प्रज्ञात तथा निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

योगसूत्र में केवल **'चित्तवृत्तिनिरोध'** शब्द पढ़ा है, 'सर्वचित्तवृत्ति निरोध' नहीं है। इससे सूत्रकार ने सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दोनों प्रकार की समाधियों को योग बतलाया है। असम्प्रज्ञात-समाधि जिसमें सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है, वह निरूद्ध अवस्था तो योग है ही तथा सम्प्रज्ञात-समाधि भी जिसमें सात्विक एकाग्रवृति बनी रहती है, वह एकाग्र अवस्था भी योग के लक्षण के अन्तर्गत आती है। चित्त से तम और रजस् के निवृत्त होने पर सत्त्व के प्रकाश में जो एकाग्रवृत्ति है, उसको भी योग समझना चाहिए।

3.10 योग के लाभ एवं प्रभाव

योग हमें अपने आप से मिलाता है। हमें अन्तर्मुखी बनाता है। हमें अपने अन्दर स्थिर करता है। योग की गहराई में अचल शान्ति है, उस अवस्था में पहुँचने पर साधक को वह सब कुछ मिलता है, जो उसे मिलना

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

चाहिए, क्योंकि योगसाधक का व्यक्तित्व उस अनन्त शक्ति से जुड़ जाता है। हमारे अन्दर और बाहर प्रशान्त आनन्द की लहरें दौड़ने लगती हैं। तब हमें किसी प्रकार का भय, मृत्यु और दु:ख पीड़ित नहीं करता है। प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक कार्य में सुख का ही अनुभव होता है। तब सर्वत्र अनन्त शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति होती है। इस अवस्था में ऐसी अनुभूति होती है कि हम और ये सम्पूर्ण जगत एक ही विभूति के अंश है। यह अवस्था अनिर्वचनीय तथा अवर्णनीय होती है। वास्तव में यह वह अवस्था है और जब हम अक्षय अमृत से भर जाते हैं।

योगसाधन से मन स्थिर व शान्त होने लगता है। साधक सांसारिक दु:खों से दु:खित नहीं होते। सांसारिक दु:ख उनको बेचैन नहीं कर पाते। वे सांसारिक घटनाओं को साक्षी भाव से देखते हैं। वे योगसाधक सुख व दु:ख की स्थिति में समान रहते हैं। उनके व्यवहार व विचार में परिस्थितियों के कारण परिवर्तन नहीं होते हैं। योग के एक अभ्यासी के जीवन में उसे सभी स्तरों पर जो लाभ होता है, उन्हें शब्दों में व्यक्त करना बहुत कठिन है, परन्तु एक साधक को जो योग की गंगा में डुबकी लगाने से लाभ होते हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं–

1. **कार्यकुशलता**– योगसाधक जब कोई भी सांसारिक कार्य करता है तो उसका शरीर मन व इन्द्रियाँ एक जुट होकर उस कार्य को करने लगते हैं, जिससे कि उसकी पूरी शक्ति उस कार्य को करने लग जाती है। इससे वह अपने कार्य को अधिक क्षमता के साथ करने में सफलता प्राप्त करता है। उसकी कार्यकुशलता उच्चतम शिखर पर होती है। इसीलिए गीता में कहा है– **'योगः कर्मसु कौशलम्'।**
2. **व्यवहार**– ध्यान के अभ्यासी सांसारिक सुखों से सुखी व सांसारिक दु:खों से दु:खी नहीं होते हैं। वे अपने आसपास की घटनाओं को द्रष्टा भाव से देखते हैं। वे उन घटनाओं से प्रभावित नहीं होते हैं। उनके विचार और व्यवहार संतुलित बने रहते हैं।
3. **वाणी संयम**– साधक जब योग प्रेमी बन जाता है तो वह कम शब्दों से काम चलाना सीख जाता है। जहाँ बोलना आवश्यक न हो वहाँ वह मौन रहता है। वाणी संयम से योग साधना में साधक के जीवन में आने वाले बहुत से कलह टल जाते हैं। ऐसे अभ्यासी के शब्द अधिक असरदार होते हैं। वाणी पर खर्च होने वाली ऊर्जा की बचत होती है। ऐसे व्यक्ति का क्रोध शान्त हो जाता है। वाणी संयम से झगड़े की सम्भावना कम होती है। वाणी में मधुरता आती है।
4. **ग्रहणशक्ति**– योगी को यह जानकारी हो जाती है कितना सुनना है, किन शब्दों को ग्रहण करना है, किन शब्दों को ग्रहण नहीं करना है। अनावश्यक बातों को वह ग्रहण ही नहीं करता है। इस प्रकार उसकी ग्रहण शक्ति का विकास होता है।
5. **क्रोध पर नियन्त्रण**– क्रोध वह अग्नि है, जो व्यक्ति की बुद्धि को नष्ट कर देती है लेकिन योग का अभ्यासी जब दूसरों के साथ आत्मसात् करना सीख जाता है अर्थात् जिस परम तत्त्व को उसने अपने

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

भीतर अनुभव किया है, उसे यह समझ में आ जाता है कि वही परम तत्त्व सभी के भीतर वास करता है। यह अवस्था आने पर योग के अभ्यासी में क्रोध जैसा भयंकर आवेश प्रवेश नहीं कर पाता, जिससे कि उसका स्वभाव शान्त रहता है और वह क्रोध से होने वाली शारीरिक व मानसिक हानि से भी बचता है।

6. **निर्भीकता**– जब हमारा संग उस अमृत तत्त्व से होता है तो हमारा लगाव नश्वर वस्तुओं से कम होता जाता है, जो हमारे पास है उसके छूट जाने का भय हमें नहीं सताता है। इससे वह मानसिक स्तर पर भयभीत नहीं होता है। यह निर्भीकता उसके मन को शान्त करती है, जो उसे योगसाधना की ओर ले जाती है।
7. **त्यागी जीवन**– योगी की अनावश्यक संचय के प्रति लालसा समाप्त होने लगती है। संग्रह के प्रति उदासीनता आने लगती है क्योंकि योग के अभ्यासी को यह समझ में आने लगता है कि संचित की जाने वाली सभी वस्तुएँ नश्वर हैं अर्थात् उसमें अपरिग्रह का गुण आने लगता है।
8. **सफलता**– यदि योगसाधक जीवन में किसी भी स्तर पर असफल होता है तो वह निराश नहीं होता है, अपितु पुनः सफलता प्राप्ति के लिए अधिक तन्मयता से परिश्रम करता है और सफलता उसके पैर पखारती है।
9. **अल्पाहारी**– योगाभ्यासी के शरीर की पाचकाग्नि एक दम सही रहती है। उसकी तृप्ति योग से होती है। भोजन तो वह केवल जीवन-यात्रा के लिए ग्रहण करता है। अतः वह अल्पाहारी होता है।
10. **उत्तम गृहस्थ जीवन**– योग के अभ्यासी की सोच सकारात्मक होती है। अतः वह प्रसन्नता के साथ अपने गृहस्थ जीवन के दायित्वों को पूर्ण करता है। इससे उसका गृहस्थ जीवन अधिक सुखी व सफल बनता है। यदि गृहस्थ जीवन में कोई बाधा आती है तो वह उसे सरलतापूर्वक दूर करने में सफल होता है। इससे उसका गृहस्थ जीवन सुखी होता है।
11. **मधुर सम्बन्ध**– योग के साधक के संबन्ध घर, परिवार, समाज, व्यवसाय तथा अन्य सभी क्षेत्रों में मधुर होते हैं। वह दूसरों के लिए जीता है, इसलिए उससे सभी स्नेह करते हैं।
12. **तेजस्वी मुखण्मडल**– योग के साधक के मस्तक पर चमक, चेहरे पर तेज, प्रसन्नता और सौम्यता झलकती है। उसके तेज से उसके आसपास का वातावरण भी आकर्षक, शुद्ध तथा पवित्र होता है।
13. **शक्ति का संचय**– योगी शक्ति का अपव्यय नहीं करता। वह विश्व कल्याण के लिए शक्ति का व्यय करता है, जिससे उसको भी विश्व शक्ति पुंज से अधिक शक्ति मिलने लगती है। इस प्रकार ध्यान के अभ्यासी में शक्ति का संचय होता है। वह अपने आपको हमेशा ऊर्जावान अनुभव करता है।
14. **शान्ति और परम आनन्द की अनुभूति**– व्यक्ति की मनोदशा उसके मस्तिष्क में बनने वाली तरंगों पर निर्भर करती है। विज्ञान द्वारा मस्तिष्क में बनने वाली चार प्रकार की तरंगों को खोजा गया है। इन्हें

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अल्फा, बीटा, थीटा व डेल्टा तरंगे कहते हैं।

जब मस्तिष्क शान्त, तटस्थ व तनावरहित होता है तो मस्तिष्क में प्रति सैकण्ड 8 से 13 तरंगे बनती हैं। जब साधक ध्यान की अवस्था में होता है तब अल्फा तरंगे बनती हैं, जो कि शान्ति और आनन्द का अनुभव कराती हैं। बीटा तरंगे सक्रिय मस्तिष्क की स्थिति है, थीटा तरंगे अर्द्धनिद्रा तथा डेल्टा तरंगे नींद की अवस्था में बनती हैं, जो कि कई प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों को ठीक करती हैं तथा साधक को शान्ति तथा परम आनन्द की अनुभूति करवाती हैं।

अन्य प्रभाव–

- योग के अभ्यासी के शरीर में बनने वाले हार्मोन्स का सन्तुलन अच्छा बनता है।
- पाचक ग्रन्थियों से होने वाले स्रावों का सन्तुलन सही होने से पाचन क्रिया सुदृढ़ बनती है, जिससे मल का निष्कासन भी सहज होता है।
- योग के अभ्यास से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है।
- योग बेचैनी तथा अशान्त अवस्था को शान्त अवस्था में बदलने की तकनीक है। योग की क्रिया से माँसपेशियों के तनाव तथा भावनात्मक तनाव से हमें मुक्ति मिलती है।
- हृदय की गति कम होती है उसकी माँसपेशीय प्रणाली सशक्त बनती है।
- योग के अभ्यासी को रात्रि में प्रगाढ़ नींद आती है अर्थात् वह अनिद्रा के रोग से बचा रहता है।
- हृदय की धड़कनों के बीच अन्तराल बढ़ने से हृदय को विश्राम मिलता है और इससे हृदय के रोग के आक्रमण की संभावना कम हो जाती है।
- शरीर में आक्सीजन की खपत कम होने से हृदय को कम काम करना पड़ता है।
- जब हम योग का अभ्यास करते हैं उससे हमें जो शान्ति और आनन्द मिलता है और जो मस्तिक में तरंगे बनती हैं उनसे हृदय की कोरनरी धमनियाँ तथा शरीर की अन्य रक्तनलिकाओं के अवरोध ठीक होते हैं उनमें लचक आती है, उच्च रक्तचाप का रोग ठीक होता है।

जीवन के लक्ष्य को समझने के लिए हमें प्रतिदिन योग का अभ्यास करना चाहिए और इस योगरूपी गंगा में डुबकी लगाकर जीवन को सार्थक बनाना चाहिए।

3.11 सारांश

योगदर्शन का भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन वाङ्मय में योगविद्या का उल्लेख अनेकशः प्राप्त होता है। योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि हैं, जिन्होंने 'योगसूत्र' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। पातञ्जल योगदर्शन में योग के स्वरूप और उसके विविध प्रकारों का सूक्ष्म विवेचन किया गया

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

है। पतञ्जलि के अनुसार **'योग: चित्तवृत्तिनिरोध:'** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्तवृत्तियों का निरोध योग के आठ अंगों के ज्ञान एवं अभ्यास से हो सकता है। जिससे व्यक्ति को शान्ति और ज्ञान प्राप्त होता है और अन्तत: कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति। इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् ज्ञात होता है कि मानव जीवन के परम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति हेतु योगदर्शन उसका व्यावहारिक अथवा प्रायोगिक पक्ष प्रदान करता है। योगसूत्र पर महर्षि व्यास का प्राचीन एवं प्रामाणिक भाष्य उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त अनेक वृत्तियाँ व टीकाएँ भी उपलब्ध हैं। योग का भारतीय जीवन पद्धति में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। चूँकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य का आधार तो शरीर ही है। शरीर रूपी नौका को योग-अग्नि में तपाकर मोक्ष की प्राप्ति करना ही वास्तविक अर्थों में योग है।

3.12 पारिभाषिक शब्दावली

अनुशासन – ऐसा उपदेश जो पूर्व से चला आ रहा है

युज् – समाधि, जुड़ना

योग – योग समाधि को कहते हैं और समाधि चित्तवृत्तियों को बाहरी विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी कर अपने चित्त में लीन कर देने की स्थिति है, जिसे योग कहा गया है।

उपदेष्टा – उपदेश देने वाला, ज्ञान देने वाला

चित्त की भूमियाँ – चित्त अथवा मन त्रिगुणात्मक (सत्व, रज, तम) है, तीनों गुणों के मिश्रण से चित्त की पाँच भूमियाँ (अवस्थाएँ) बनती हैं–मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध अवस्था।

सम्प्रज्ञात समाधि – चित्त से तमस् और रजस् गुण के निवृत्त होने पर जो सात्विक एकाग्रवृत्ति बनती है, वह सम्प्रज्ञात समाधि है।

असम्प्रज्ञात समाधि – जिसमें सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है, वह असम्प्रज्ञात समाधि है।

चित्त – मन

प्रमाद – आलस्य

प्रणव: – ओउम्, ईश्वर का वाचक

अस्तेय – चोरी न करना

अपरिग्रह – इकट्ठा न करना

मुक्ति – मोक्ष, निर्वाण

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3.13 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. *पातञ्जलयोगदर्शनम्;* (व्याख्या.) डॉ. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019
2. *पातञ्जलयोगदर्शनम्;* (व्याख्या.) परमहंस स्वामी अनन्त भारती, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2018
3. *पातञ्जलयोगदर्शन-भाष्यम्;* भाष्यकार, आचार्य राजवीर शास्त्री, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 2018
4. *पातञ्जलयोगप्रदीप;* ग्रन्थकार, श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, कोलकाता, सं. 2069
5. दासगुप्ता, एस.एन.–*भारतीय दर्शन का इतिहास*, अनु.–कलानाथ शास्त्री और सुधीर कुमार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, तृ.सं. 2003

3.14 बोध-प्रश्न एवं अभ्यास-प्रश्न

बोध-प्रश्न

1. योगसूत्र के प्रणेता कौन हैं?
2. योग के आठ अंगों के नाम बताइए।
3. योगसूत्र का प्रतिपाद्य विषय क्या है?
4. योगसूत्र में वर्णित योग की परिभाषा लिखिए।
5. प्रणव किसे कहा गया है?

अभ्यास-प्रश्न

1. योगदर्शन की प्राचीन परम्परा को स्पष्ट कीजिए।
2. योग से क्या तात्पर्य है?
3. योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग का निरूपण कीजिए।
4. एकाग्र एवं निरुद्ध चित्तभूमि के स्वरूप एवं इनके महत्त्व को समझाइए।
5. मानव जीवन में योग का क्या महत्त्व है, स्पष्ट कीजिए।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

   क. यम   ख. महर्षि पतञ्जलि

   ग. साधनपाद   घ. योगसूत्र

   ङ योग

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ–4

चक्र–साधना

डॉ. अजित कुमार (संस्कृत विभाग)
असिस्टेंट प्रोफेसर, लेडी श्रीराम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 सप्त चक्र–साधना
4.3.1 मूलाधार चक्र साधना
4.3.2 स्वाधिष्ठान चक्र साधना
4.3.3 मणिपूरक चक्र साधना
4.3.4 अनाहत चक्र साधना
4.3.5 विशुद्धि चक्र साधना
4.3.6 आज्ञा चक्र साधना
4.3.7 सहस्रार चक्र साधना
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 संदर्भ–ग्रन्थ
4.7 बोध–प्रश्न एवं अभ्यास–प्रश्न

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

4.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी-

- मानव शरीर में स्थित ऊर्जा के केन्द्रों (चक्रों) को पहचानेंगे।
- मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि सातों चक्रों का मूल केन्द्र हमारे शरीर की रीढ़ की हड्डी में कहाँ-कहाँ पर हैं, यह समझेंगे।
- शरीर में प्राणों को प्रवाहित करने वाली तीनों नाड़ियों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- सुषुम्णा नाड़ी पर स्थित सातों चक्रों पर ध्यान की विधि तथा उससे होने वाले लाभ से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आधुनिक शरीर-विज्ञान में नाड़ियों के गुच्छों को जहाँ प्राणशक्ति अधिक मात्रा में एकत्रित होती है, उस स्थान को चक्र (Nerve plaxus) कहते हैं अर्थात् नाड़ी केन्द्र को चक्र कहते हैं। जब प्राण किसी नाड़ी-केन्द्र पर सक्रिय होता है, तब प्राण वहाँ पर प्रबल वेग से घूमने लगता है, इसलिए उस स्थान को चक्र कहते हैं। जिस प्रकार कमल के फूल की पंखुड़ियाँ खिलने से पहले बंद रहती हैं और फिर समय आने पर खिलती हैं, ठीक वैसे ही शरीर में ऊर्जा के केन्द्र बन्द पड़े रहते हैं, उन बन्द पड़े ऊर्जा के केन्द्रों को प्राण साधना या ध्यान साधना के द्वारा खोला जा सकता है, विकसित किया जा सकता है। इन ऊर्जा के केन्द्रों का मूल रीढ़ की हड्डी में स्थित सुषुम्णा नाड़ी के अन्तर्गत है। ये केन्द्र सूक्ष्म शरीर में होने के कारण मृत शरीर में शल्यक्रिया द्वारा नहीं देखे जा सकते। इन ऊर्जा के स्थानों (केन्द्रों, चक्रों) की संख्या विविध तन्त्र ग्रन्थों में सात मानी गई है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर आदि इन सात चक्रों में संगृहीत ऊर्जा के जागरण की विधि एवं उससे हमारे जीवन में होने वाले परिवर्तनों के विषय में हम इस पाठ में विस्तृत वर्णन करने जा रहे हैं–

4.3 सप्त चक्र-साधना

मानव शरीर में प्राणों को प्रवाहित करने वाली असंख्य नाड़ियाँ हैं। जिसमें पन्द्रह प्रमुख नाड़ियाँ हैं। इन पन्द्रह नाड़ियों में भी तीन मुख्य हैं- **सुषुम्णा, इड़ा** तथा **पिङ्गला**। जिनका योग से विशेष

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

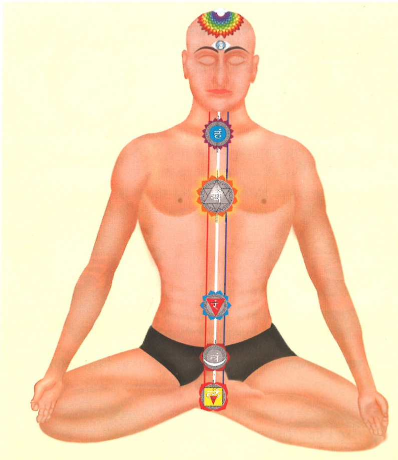

ये सभी चक्र सुषुम्णा नाड़ी में विद्यमान हैं। ये सभी प्राणमयकोष के होने से भौतिक नहीं हैं। मेरुदण्ड में बायीं ओर इडा, दाहिने पिंगला तथा मध्य में सुषुम्णा नाड़ी स्थित है।

सम्बन्ध है। इन तीनों नाड़ियों में सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है। यह नाड़ी अति सूक्ष्म नली के समान है, जो गुदाद्वार (मलद्वार) के निकट मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) के भीतर से होती हुई मस्तिष्क के ऊपर तक जाती है। इसी मलद्वार (गुदा-स्थान) के पास से इसके बायीं ओर से इड़ा तथा दाहिनी ओर से पिङ्गला नासिका के मूल स्थान तक जाती हैं। वहाँ पर भौहों (भ्रूमध्य) के बीच में ये तीनों नाड़ियाँ आपस में मिल जाती हैं।

इन तीनों नाड़ियों में क्रमशः सुषुम्णा को सरस्वती, इड़ा को गङ्गा और पिङ्गला को यमुना भी कहते हैं। गुदा के निकट जहाँ से ये तीनों नाड़ियाँ अलग-अलग होती हैं उसको **'मुक्त त्रिवेणी'** कहते हैं और भ्रूमध्य में जहाँ ये तीनों पुनः मिल जाती हैं, उसको **'युक्त त्रिवेणी'** कहते हैं।

सामान्यरूप से प्राण-शक्ति निरन्तर इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों से श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रवाहित होती रहती है। इड़ा नाड़ी को चन्द्र-नाड़ी तथा पिङ्गला नाड़ी को सूर्य नाड़ी कहते हैं। **इडा-नाड़ी** तमोगुण की प्रधानता वाली होती है और **पिङ्गला-नाड़ी** में रजोगुण की प्रधानता होती है। श्वास कभी दाहिनी नासिका से अधिक गति से चलता है तो कभी बायीं नासिका से अधिक गति ये चलता है। कभी-कभी दोनों नासिकाओं से समान गति से श्वास चलता है। जब बायीं नासिकापुट से श्वास अधिक गति से चलता है तो इसे इड़ा या चन्द्र-स्वर कहते हैं और जब दाहिने नासिकापुट से श्वास अधिक गति से चल रहा हो तो इसे पिङ्गला या सूर्यस्वर कहते हैं एवं जब दोनों नासापुटों से समान गति से अथवा एक क्षण एक नासापुट से, दूसरे क्षण दूसरे नासापुट से श्वास चल रहा हो तो उसे सुषुम्णा स्वर कहते हैं।

सुषुम्णा के अन्तर्गत सूक्ष्म नाड़ियाँ-

सुषुम्णा के अन्दर एक वज्र-नाड़ी है, वज्र नाड़ी के अन्दर चित्रणी-नाड़ी है और चित्रणी के मध्य में ब्रह्म-नाड़ी है। ये सब नाड़ियाँ मकड़ी के जाले जैसी बहुत सूक्ष्म हैं, जिनका ज्ञान केवल योगियों को ही हो सकता है। ये नाड़ियाँ सत्त्वगुण-प्रधान, प्रकाशमय और अद्भुत शक्तिशाली हैं। ये ही सूक्ष्म-शरीर तथा सूक्ष्म प्राण के स्थान हैं। इनमें बहुत से स्थान सूक्ष्म शक्तियों के केन्द्र हैं, जिनमें बहुत-सी अन्य सूक्ष्म-नाड़ियाँ मिलती हैं। इन शक्तियों के केन्द्रों को चक्र कहते हैं। इनमें सात चक्र या

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

स्थान मुख्य हैं-

1. मूलाधार चक्र, 2. स्वाधिष्ठान चक्र, 3. मणिपूरक चक्र, 4. अनाहत चक्र, 5. विशुद्धि चक्र, 6. आज्ञा चक्र, 7. सहस्रार चक्र।

ये चक्र पाँच तत्त्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी), पाँच तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध), पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पाँच प्राणों, अन्त:करण, सभी वर्णों-स्वरों तथा सातों लोकों के मण्डल हैं और अनेक प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत से युक्त हैं। साधारण अवस्था में ये सातों चक्र बिना खिले कमल के सदृश अधोमुख (नीचे की ओर मुख किए) हुए अविकसित रहते हैं। ध्यान के द्वारा तथा अन्य प्राणायाम आदि से उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्वमुख (ऊपर की ओर मुख) होकर विकसित होते हैं, तब उनकी अलौकिक शक्तियों का विकास होता है।

सात चक्रों में से प्रत्येक चक्र में नाना प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ हैं। तान्त्रिक तथा हठयोग के ग्रन्थों में प्राय: इनका वर्णन है। हम जिज्ञासु साधकों के लिए इन चक्रों का इतना वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं, जितने का राजयोग से सम्बन्ध है तथा तान्त्रिक ग्रन्थों की उन बातों का भी जिनको छात्रों को जानने की जिज्ञासा हो सकती है।

4.3.1 मूलाधार चक्र साधना

मूलाधार चक्र (Pelvie Plexus) - यह चक्र रीढ़ की हड्डी के निचले अंतिम छोर के पास, मलद्वार और जननेन्द्रिय के बीच स्थित है। यह चक्र गुदा अस्थि के निकट स्थित है। इस स्थान को हरि का द्वार भी कहा गया है। यहीं से इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्णा पहली बार आपस में मिलने के बाद अलग-अलग होती हैं, इसलिए इसे **'मुक्त त्रिवेणी'** भी कहा गया है। यहाँ पर ब्रह्म ग्रन्थि का निवास है। इस चक्र की साधना सिद्ध होने पर ब्रह्म ग्रन्थि खुल जाती है। यह चक्र पृथ्वी तत्त्व प्रधान है। इस चक्र के क्रियाशील होने पर साधक के भीतर पृथ्वी के गुण, जैसे कि स्थिरता, निश्चलता, दृढ़ता, क्षमा तथा सहनशीलता आदि आने लगते हैं। शारीरिक स्तर पर हड्डियों, माँसपेशियों, नस नाड़ियों के दोष ठीक होते हैं। सिद्ध पुरुषों के मतानुसार इस चक्र का स्वरूप ध्यान साधना के लिये एक ऐसे कमल के रूप में चित्रित किया है, जिसकी चार लाल रंग की पंखुडियाँ हैं, जो एक सफेद रंग के गोलाकार चक्र को घेरे हुए हैं। ये चार पंखुड़ियाँ, चार सूक्ष्म नाड़ियों की ओर संकेत करती है। इनके

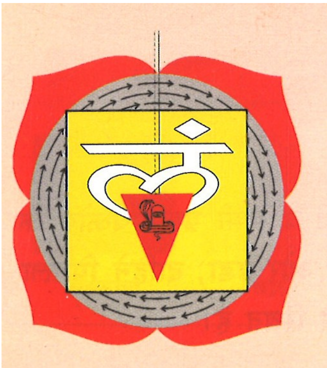

१. मूलाधारचक्र

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

चार दल अक्षर- **वं, शं, षं, सं** इन नाड़ियों में होने वाले स्पंदन को दर्शाते हैं। इस गोलाकार चक्र के अन्दर एक चार कोणों वाला पीले रंग का वर्गाकार यन्त्र है, जिससे दिव्य प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। इस यंत्र के बीच लाल रंग का एक उल्टा त्रिकोण है। इसका बीज मन्त्र **लं** है। देवता बह्म है। बीजवाहन एरावत हाथी है, जिसकी गति सामने की ओर है। लोक भूः (भूमि) गुण गन्ध है। कुछ योगियों का दावा है कि उन्होंने इस चक्र को ध्यान की गहराई में जाकर अनुभव किया है।

साधना–विधि–

- इस चक्र की साधना के लिए किसी एक आसन में निश्चित समय तथा निश्चित स्थान पर बैठें। सर्वप्रथम आसन में बैठकर 4–5 मिनट शरीर का नीचे से ऊपर तक तथा ऊपर से नीचे तक मानसिक अवलोकन करें और इसे तनाव मुक्त बनाएँ।
- मन को शान्त करें। शरीर व मन को स्थिर तथा शान्त करके अपने सामान्य श्वासों का मानसिक अवलोकन शुरू कर दें।
- अब गहरी लम्बी श्वास लें। श्वास भरते हुए यह अनुभव करें कि श्वास मूलाधार से लेकर सहस्रार चक्र तक जा रहा है। इसी प्रकार श्वास निकालते हुए यह अनुभव करें कि श्वास सहस्रार चक्र से मूलाधार चक्र तक जा रहा है।
- चार से पाँच मिनट तक इसका अभ्यास करने के पश्चात् मूलाधार चक्र पर ध्यान का अभ्यास शुरू करें। मूलाधार चक्र पर साधक देर तक अभ्यास करने के लिये **लं** बीजमंत्र का जप मानसिक रूप में करता है।
- मूलाधार चक्र पर ध्यान के अभ्यास हेतु एक ऐसे लाल रंग के चार पंखुड़ियों वाले कमल के फूल को चित्रित किया गया है, जिसका ऊपर वर्णन किया है। इस फूल के चार दल अक्षर वं, शं, षं तथा सं इस चक्र से निकलने वाली चार नाड़ियों को दर्शाते हैं। इन नाड़ियों से होने वाले स्पंदन को फूल के चार दल अक्षरों के रूप में दिखाया गया है।
- साधक अपने मन को इन दलों पर एकाग्र कर, एक–एक दल अक्षर का बीज मन्त्र के रूप में अभ्यास करता है। उस समय शरीर में इन दलों के रूप में पाई जाने वाली इन सूक्ष्म नाड़ियों में स्पंदन होता है, जिसकी अनुभूति साधक को सुख व आनन्द देने वाली होती है। इसके पश्चात् साधक द्रष्टा भाव से मूलाधार चक्र को देखे।
- जब साधक इस चक्र पर आंतरिक धारणा का अभ्यास करता है तो उसे यह कल्पना करनी है कि इस वर्गाकार से प्रकाश की किरणें निकल कर उसके पूरे शरीर में फैल रही हैं और

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उसमें भी पृथ्वी के गुण आ रहे हैं।

- कुंडलिनी योग में यह मान्यता है कि इस चक्र के पास ही कुंडलिनी (सूक्ष्म शक्ति) नीचे की ओर मुँह किए हुए एक साँप की तरह साढ़े तीन फेरे डाले शंखनुमा एक आकृति में सुप्त अवस्था में स्थित है। इस चक्र की साधना सिद्ध होने पर कुंडलिनी जागृत होती है और उसका मुँह ऊपर की ओर हो जाता है, जो कि मूलाधार चक्र को भेद कर अपनी यात्रा सुषुम्णा मार्ग से ऊपर की ओर चढ़ना शुरू करती है।

लाभ-

- जब साधक का इस चक्र पर ध्यान लगता है तो उसे कुण्डलिनी शक्ति का पूरा ज्ञान हो जाता है और वह उसे जागृत करने में सफल होता है।
- जब कुण्डलिनी जागृत होती है तो साधक को विशेष सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं जैसे कि उसका अपने प्राण, मन तथा वीर्य पर नियन्त्रण होने लगता है।
- उसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान होता है। उसे सहज आनन्द की अनुभूति होती है।
- यहीं से वास्तव में साधक की आध्यात्मिक यात्रा का शुभारम्भ होता है।

4.3.2 स्वाधिष्ठान चक्र साधना

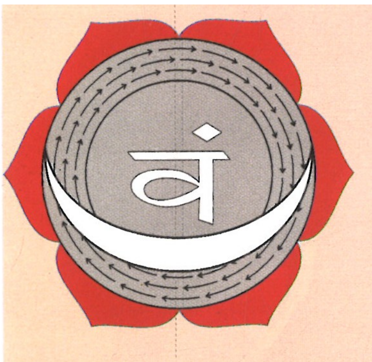

२. स्वाधिष्ठानचक्र

स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric Plexus)- यह ध्यान का दूसरा चरण है। जिसमें साधक के ध्यान का केन्द्र स्वाधिष्ठान चक्र होता है। स्थूल शरीर में पेट के निचले भाग के अंग, जैसे- आँतें, प्रजनन अंग तथा मूत्राशय आदि इस चक्र के नियन्त्रण में आते हैं। यह चक्र पेडू में मुखशायी ग्रन्थि स्नायु जाल गुच्छ (Prostatic Plexus) के नजदीक रीढ़ में सुषुम्णा मार्ग पर स्थित है। यह चक्र अचेतन का प्रतिनिधित्व करता है। इस शक्ति केन्द्र का संबंध अचेतन मन की इच्छाएं विशेषत: कामेच्छा एवं रस आस्वादन से है। यही कारण है कि कई बार साधक की कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा इस चक्र को भेद कर ऊपर की ओर जाना कठिन हो जाता है। यह चक्र मूलाधार से ऊपर रीढ़ पर ठीक जननेन्द्रिय के पीछे स्थित है। यह जल तत्त्व प्रधान है। इसमें जल तत्त्व के गुण, जैसे-तरलता, कोमलता, स्निग्धता तथा आकार ग्रहण करने की क्षमता विद्यमान है। अत: इसके सक्रिय होने पर साधक में कोमलता, शीतलता तथा निडरता जैसे गुण आने लगते हैं। इस चक्र का बीज मन्त्र **वं** तथा बीज वाहन मकर है, यह लम्बी डुबकी लगाता है। इसलिए

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

इसकी गति नीचे की ओर है। इसका देवता विष्णु, लोक भुवः तथा गुण रस है। इस चक्र पर धारणा के अभ्यास हेतु एक ऐसे कमल के फूल को चित्रित किया गया है जिसकी सिन्दूरी रंग की छः पंखुड़ियाँ हैं, जो कि एक सफेद रंग के वृत्त को घेरे हुए हैं। उसके ऊपरी हिस्से में एक अर्धचन्द्रमा यन्त्र के रूप में स्थित है। इस कमल के फूल के छः दलों के अक्षर **बं, भं, मं, यं, रं, लं** हैं जो कि इस चक्र से निकलने वाली छः नाड़ियों को दर्शाते हैं। इन नाड़ियों से होने वाले स्पंदन को फूल के छः दल अक्षरों के रूप में दिखाया गया है।

साधना विधि–

- स्वाधिष्ठान चक्र साधना को प्रारम्भ करने से पहले किसी एक शास्त्रीय आसन में बैठें। साधना का स्थान पवित्र, शान्त व एकान्तमय हो। प्रतिदिन साधना का समय व स्थान एक हो तो अधिक अच्छा है।
- चक्र साधना प्रारम्भ करने से पहले चार-पाँच मिनट तक सारे शरीर का मानसिक अवलोकन करें। शरीर व मन को शान्त व स्थिर करके सामान्य श्वासों का मानसिक अवलोकन करें।
- अब मूलाधार चक्र का मानसिक दर्शन करते हुए उससे दो अंगुल ऊपर जननेन्द्रिय के पीछे स्वाधिष्ठान चक्र का मानसिक दर्शन करें। यहाँ पर एक ऐसे कमल के फूल की कल्पना करें, जिसकी छः सिन्दूरी रंग की पंखुड़ियाँ सफेद रंग के वृत्त को घेरे हुए हैं।
- इस वृत्त के ऊपरी भाग में एक सफेद अर्धचन्द्राकार आकृति है, जिससे प्रकाश की किरणें फैल रही हैं। साधक मन की आँख से इसी चित्र का मानसदर्शन करता है।
- इस चित्र पर ध्यान का अभ्यास देर तक करने के लिये साधक **वं** बीज मंत्र का मानसिक जाप करता है।
- कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर मूलाधार चक्र को भेदने के बाद जब सूक्ष्म सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से ऊपर की ओर आते हुए इस शक्ति केन्द्र को स्पर्श करती है तो सूर्य उदय के समान अपनी सिन्दूरी (Vermillion) आभा बिखेरने लगती है और स्वाधिष्ठान चक्र की सभी पंखुड़ियाँ खिल उठती हैं।

लाभ–

- स्वाधिष्ठान चक्र के जागृत होने पर साधक को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक तीनों ही प्रकार की उपलब्धियाँ होने लगती हैं।
- शारीरिक स्तर पर जननेन्द्रिय के रोग ठीक होते हैं। शरीर में रक्त का भ्रमण ठीक बनता है।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- मानसिक स्तर पर साधक पाश्विक शक्तियों पर विजय प्राप्त करता है। काम, क्रोध, भय, निद्रा जैसी पाश्विक शक्तियों का मूल स्रोत यह शक्ति केन्द्र है।
- जब साधक स्वाधिष्ठान चक्र धारण का अभ्यास करता है तो वह इन पाश्विक शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है और इनमें छिपी हुई ऊर्जा आध्यात्मिक दिशा की ओर मुड़ने लगती है।
- इस चक्र के जागृत होने पर ब्रह्मचर्य पालन और काम विजय में सहायता मिलती है।

4.3.3 मणिपूर चक्र साधना

मणिपूर चक्र (Epigastric Plexus अथवा Solar Plexus) यह चक्र मेरुदण्ड पर सुषुम्णा मार्ग पर ठीक नाभि के पीछे स्थित है। यह अग्नि तत्त्व प्रधान है। मणिपूर का अर्थ मणियों के नगर से भी लिया है। इस चक्र में अग्नि के सभी गुण विद्यमान है, जैसे कि अग्नि में ऊपर की ओर जाना, शुद्धिकरण, प्रकाशित करना अर्थात् चमकना, ऊर्जा देना जैसे गुण पाए जाते हैं। मणिपूर चक्र ध्यान के अभ्यास हेतु इसे एक ऐसे कमल के फूल के रूप में चित्रित किया गया है जिसकी दस पीले रंग की पंखुड़ियां हैं। जो कि यहाँ से निकलने वाली सूक्ष्म नाड़ियों का द्योतक है। इन नाड़ियों में होने वाले स्पंदन को उनके दल अक्षरों के रूप में दिखाया गया है। जो कि **डं, ढं, द, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं** तथा **फं** हैं। इस चक्र का बीज मंत्र **रं** है। इसका बीजवाहन मेष (मेंढ़क) देवता वृद्ध रुद्र तथा लोक स्वः है। मणिपूर चक्र की साधना का अभ्यास करने के लिये साधक प्रारम्भिक अवस्था में रं बीच मंत्र पर अभ्यास करता है। इसके पश्चात् एक-एक दल अक्षर का अभ्यास करते हुए सभी दस पंखुड़ियों से होने वाले स्पंदन को अनुभव करता है। जब इस चक्र की साधना पूर्ण होती है तो कुण्डलिनी सुषुम्णा मार्ग से उपर की ओर आते हुए इस चक्र को भेदती है। इस अवस्था में यहाँ से दिव्य प्रकाश की किरणें निकल कर चारों ओर फैलने लगती हैं उसके मध्य एक सफेद रंग का वृत्त है जिसके बीच में ब्रह्मांडीय (Cosmic) अग्नि की द्योतक अग्नि के रंग का त्रिभुजाकर त्रिकोण है, जिससे प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है। अतः इस चक्र के सिद्ध होने पर अर्थात् जागृत होने पर साधक में ऊर्ध्वगमनता, शुद्धिकरणता, सात्विकता तथा देदीप्यमानता (चमक) आदि गुण आने लगते हैं।

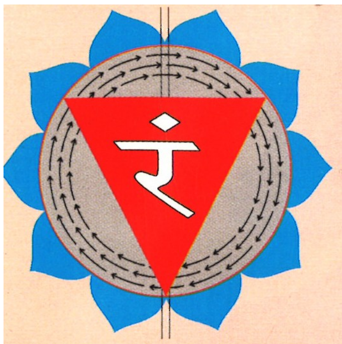

३. मणिपूरचक्र

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

साधना–विधि :

- इस चक्र पर ध्यान लगाने के लिये साधक सर्वप्रथम पद्मासन में बैठे और दोनों हाथों को ज्ञानमुद्रा में रखे।
- 2–3 मिनट तक अपने शरीर के पैर के अंगूठे से सिर की चोटी तक तथा सिर की चोटी से पैर के अंगूठे तक मानसिक अवलोकन करे। इसके बाद द्रष्टा भाव से कुछ देर अपने आते–जाते श्वासों को देखे।
- अब अपनी रीढ़ पर सुषुम्णा नाड़ी मार्ग का ध्यान कर क्रमशः उस पर स्थित मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र को निहारते हुए नाभि के पीछे रीढ़ में स्थित मणिपूर चक्र का ध्यान करने हेतु ऐसे एक कमल के फूल की कल्पना करे, जिसकी दस पीले रंग की पंखुड़ियाँ हैं जो एक श्वेत रंग के वृत्त को घेरे हुए हैं, जिसके मध्य एक अग्नि के रंग का उल्टा त्रिभुज है।
- साधक इस अवस्था में इस चक्र के बीज मन्त्र रं का मंत्र जाप करता है। तब इसकी सभी पंखुड़ियाँ खिल उठती हैं। जिनसे निकलने वाले दिव्य प्रकाश की किरणें पूरे तन व मन पर बिखरने लगती हैं।
- यह दिव्य प्रकाश साधक को अनन्त सुख व आनन्द देने वाला होता है।
- यदि साधक इस चक्र पर वर्षों तक अभ्यास करना चाहता है तो चक्र के 10 दल अक्षरों **डं, ढं** आदि पर बारी–बारी से अभ्यास करते हुए इन महत्त्वपूर्ण सूक्ष्म नाड़ियों के स्पंदन को शरीर में अनुभव करता है, जिससे साधक की धारणा अंतरंग बनती है जो कि साधक को ध्यान में ले जाने के लिए सहायक है।

लाभ–

- स्थूल शरीर में पेट के ऊपरी भाग में स्थित सभी अवयव जैसे कि जिगर, पित्ताशय, आमाशय, तिल्ली, अग्नाशय, पक्वाशय आदि इस चक्र के नियन्त्रण में आते हैं।
- इस चक्र के जागृत होने पर पेट सम्बन्धी सभी विकार ठीक होते हैं। इस चक्र के देवता भगवान विष्णु हैं, देवी लक्ष्मी हैं। यहाँ पर भगवान विष्णु पालक के रूप में हैं, जबकि दूसरी ओर माँ लक्ष्मी धन की देवी हैं। अतः इसे मणियों, हीरों तथा जवाहरातों का नगर भी कहा जाता है। ग्रन्थि स्रावों के मध्य सन्तुलन स्थापित होता है।
- जब कुण्डलिनी शक्ति इस चक्र के भेद हेतु स्पर्श करती है तो इसकी सभी पंखुड़ियाँ खिल

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

उठती हैं। ऐसा होने पर साधक को स्वास्थ्य, सौंदर्य और ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

- यह भी एक कारण है कि इसे मणियों या जवाहरातों का नगर कहा गया है। जो साधक इस जगमगाते नगर की चकाचौंध में भटक जाते हैं, उनकी आगे होने वाली आध्यात्मिक उपलब्धियों में अवरोध आ जाता है। लेकिन सच्चा साधक इस अवस्था में अपने को भटकने नहीं देता और अपनी कुण्डलिनी योग यात्रा को जारी रखता है।
- मूलाधार चक्र से लेकर मणिपूर चक्र तक की यात्रा में पृथ्वी, जल तथा अग्नि तत्त्व की प्रधानता होने के कारण ये उसे नीचे की ओर खींचते हैं अर्थात् यह संभावना बनी रहती है कि व्यक्ति संसार के आकर्षण से आकर्षित होकर आध्यात्मिक उपलब्धि से वंचित रह जाता है। लेकिन यदि साधक इस चक्र को जागृत करने में सफल हो जाता है तो उसकी आगे की यात्रा सरल व सहज हो जाती है।

4.3.4 अनाहत चक्र साधना

अनाहत चक्र (Cardiac Plexus)– अनाहत चक्र सुषुम्णा नाड़ी में हृदय के पीछे रीढ़ पर स्थित है। भौतिक शरीर में रीढ़ पर जहाँ हृदय स्नायु जाल गुच्छ (Cardiac Plexus) स्थित है, वहीं पर अनाहत चक्र सूक्ष्म रूप में सुषुम्णा नाड़ी पर स्थित है। स्थूल शरीर के दृष्टिकोण से रक्त-भ्रमण प्रणाली, हृदय, फेफड़े तथा दोनों भुजाएँ इस चक्र के नियन्त्रण में आती हैं। इसकी बारह पंखुड़ियाँ हैं जिनका हरा रंग है। इसका बीज मंत्र **यं** है। इस चक्र का तत्त्व वायु है। बीजवाहन मृग, देवता ईशान रुद्र, गुण स्पर्श तथा लोक महलोक (अन्तःकरण) स्थान है। बारह पंखुड़ियों से बारह सूक्ष्म नाड़ियां निकलती हैं, जो कि आगे विभिन्न उप-नाड़ियों में विभाजित होकर शरीर के भिन्न भिन्न भागों में जाती हैं। इन नाड़ियों को इस चक्र पर स्थित कमल के फूल की बारह पंखुड़ियों के रूप में दिखाया गया है। इन नाड़ियों में स्पंदन पैदा कर इन्हें सक्रिय करने के लिये संस्कृत के बारह दल अक्षरों वाली ध्वनि **कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं** को बीज मन्त्र के रूप में फूल की पंखुड़ियों पर अंकित है। इस चक्र पर प्रत्येक नाड़ी से निकलने वाली ध्वनि को इस का बीज मंत्र **यं** है। जब साधक इन मंत्रों का अभ्यास करता है तो वह शरीर में इन नाड़ियों में होने वाले स्पंदन की अनुभूति भी करता है। इस चक्र के मध्य दो त्रिभुज एक सीधा तथा दूसरा उल्टा आपस में

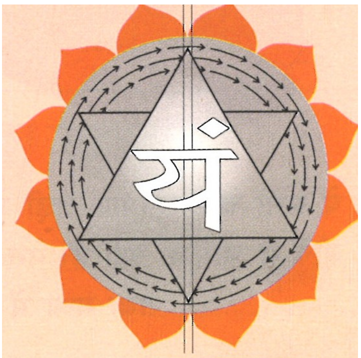

४. अनाहतचक्र

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

मिलकर एक षट्भुज का निर्माण करते हैं, जिसके मध्य एक धूम्रवर्णी स्थान निर्मित है, जहाँ पर दिव्य ज्योति प्रज्वलित हो रही है, जो हमारी जीवात्मा का प्रतीक है। साधक अपनी साधना को और प्रगाढ़ बनाते हुए इस ज्योति पर ध्यान केन्द्रित करता है।

साधना-विधि-

- इस चक्र पर ध्यान का अभ्यास करने के लिये साधक सर्वप्रथम एक आसन, जैसे पद्मानसन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन में बैठता है। अभ्यास का उचित समय ब्रह्म मुहूर्त माना गया है।
- साधक को सर्वप्रथम दो से पाँच मिनट गहरे लम्बे श्वासों का अभ्यास करने के बाद सामान्य श्वासों का कुछ समय मानसिक अवलोकन करना चाहिये।
- इसके बाद दो से तीन मिनट तक सिर की चोटी से पैर के अंगूठे तक शरीर के एक-एक अंग का मानसिक अवलोकन करते हुए उसे तनाव मुक्त बना ले।
- अब रीढ़ पर स्थित सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग में मन को एकाग्र करते हुए मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र का क्रमशः ध्यान करते हुए अनाहत चक्र का ध्यान करें। ठीक हृदय के पीछे रीढ़ में बारह हरे रंग की पंखुड़िों वाले कमल के फूल की कल्पना करें जो एक सफेद रंग के वृत को घेरे हुए हैं, जिसके मध्य दो त्रिभुज एक सीधा तथा दूसरा उल्टा एक षट्भुज बनाये हुए हैं।
- जिसके मध्य एक धूम्रवर्णी स्थान पर एक दिव्य ज्योति प्रज्वलित हो रही है, जिससे दिव्य प्रकाश निकल रहा है।
- यहाँ पर मन को एकाग्र कर चक्र के बीज मन्त्र **यं** का अभ्यास करते-करते यह अनुभव करें कि कमल के फूल की सभी पंखुड़ियाँ खिल उठी हैं और वहाँ से निकलने वाला दिव्य प्रकाश पूरे शरीर में फैल रहा है।
- जैसे-जैसे साधक की साधना इस चक्र पर परिपक्वता की ओर बढ़ने लगती है तो उसे अधिक गहन बनाने के लिये साधक सभी कमल के फूल के दल अक्षरों कं, खं आदि पर अपना अभ्यास करते हुए इन स्पंदनों को अनुभव करता है।

लाभ-

- इस चक्र के जागृत होने पर साधक को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धियाँ होने लगती हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- शारीरिक स्तर पर शरीर में रक्त शोधन, रक्त भ्रमण, हृदय, फेफड़े तथा श्वसन संबंधी दोष ठीक होते हैं। श्वसन प्रणाली तथा रक्त भ्रमण प्रणाली सशक्त बनने से अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त होता है। हृदय रोग, दमे के रोग, उच्च रक्तचाप तथा अवसाद के रोगियों के लिये अनाहत चक्र का अभ्यास बहुत लाभकारी है।
- जैसे-जैसे साधना परिपक्व होने लगती है, अनाहत चक्र का अभ्यास अंतरंग होता जाता है इस अवस्था में साधक का मन शान्त, एकाग्र तथा अन्तर्मुखी होने लगता है।
- इस चक्र पर साधक जब लगातार अभ्यास करता है तो उसमें आश्चर्यजनक आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित होने लगती हैं। चेतना के इस स्तर तक आते-आते साधक चेतना की एक बड़ी ऊँचाई पर पहुँच जाता है।
- वह प्रेम, शान्ति, करुणा और मित्रता का स्रोत-सा बनने लगता है। उसका प्रेम और सौहार्द नि:स्वार्थ, बेशर्त और अकारण होने लगता है।

4.3.5 विशुद्धि चक्र साधना

विशुद्धि चक्र (Carotid Plexus)– कंठ-कूप के पीछे मेरुदण्ड से निकलने वाली स्नायु से बनने वाले जाल को गल-कोश स्नायु जाल गुच्छ (Pharyngeal Plexus) कहते हैं। सांकेतिक रूप से ठीक इसके पास मेरुदण्ड पर ही यह चक्र सूक्ष्म रूप में स्थित है। इस चक्र से सोलह सूक्ष्म नाड़ियाँ निकलती हैं जो ध्वनि या स्पंदन इन नाड़ियों से निकलता है, उसे सोलह दल अक्षरों के रूप में दिखाया गया है। ये दल अक्षर **अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लं, लॄं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः** हैं। इस चक्र में आकाश तत्त्व की प्रधानता है। इसका बीज मंत्र **हं** है। इसका बीजवाहन हस्ती (हाथी), देवता पंचमुख वाले सदाशिव, लोक जन:, गुण शब्द है। इस चक्र पर ध्यान सिद्धि के साधक में आकाश तत्त्व के गुण जैसे कि निर्मलता, असीमता, अनन्तता, व्यापकता और शून्यता आते हैं। फूल की 16 नीले रंग की पंखुड़ियाँ एक श्वेत रंग के वृत्त को घेरे हुए हैं। इस यंत्र से प्रकाश की किरणें निकल रही है। जब जागृत कुण्डलिनी इस चक्र का भेदन करती है तो इस की सभी पंखुड़ियाँ खिल उठती हैं। जब साधक इस चक्र पर ध्यान लगाता है तो वह इस यन्त्र के मध्य एक सफेद वृत्त पर सोम चक्र से सोम देवताओं के द्वारा निर्मित अमृत रस की सफेद रंग की बूँद टपकते हुए अनुभव करता है। जब साधक यह अनुभूति करता है तो उसमें आध्यात्मिक शक्तियों

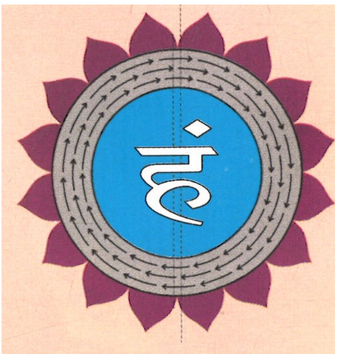

५. विशुद्धिचक्र

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

का विकास होने लगता है। उसका व्यक्तित्त्व प्रफुल्लित और देदीप्यमान हो उठता है। विशुद्धि का अर्थ है पूर्णतया शुद्ध। इस केन्द्र के सक्रिय होने पर साधक में शुद्ध सौन्दर्य, शुद्ध सत्य और शुद्ध सौहार्द का उदय होने लगता है। वह जो कुछ भी करता है सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् से आलोकित हो उठता है। साधक के द्वारा विशुद्धि चक्र पर अभ्यास करना, अंतरंग आकाश धारणा का अभ्यास कहलाता है। जब साधक का यह अभ्यास परिपक्व हो जाता है तो यही अवस्था साधक को ध्यान में ले जाने के लिये सहायक होती है।

साधना–विधि–

- इस चक्र पर ध्यान लगाने के लिए साधक को किसी एक आसन, यथा पद्मासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन में बैठकर सर्वप्रथम पैर के अंगूठे से सिर की चोटी तक और सिर की चोटी से पैर के अंगूठे तक बार–बार मन की आँखों से एक–एक अंग को तीन से पाँच बार निहारें।
- उसके पश्चात् दो से तीन मिनट नासिका के अग्रभाग पर मन को एकाग्र कर आते जाते श्वास को द्रष्टा भाव से देखें।
- अब अपनी रीढ़ को ऊपर से नीचे की ओर निहारें। उस पर सुषुम्णा नाड़ी का ध्यान करें।
- क्रमशः निर्धारित स्थानों पर स्थित मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर तथा अनाहत चक्र पर मन को एकाग्र करें।
- यह अनुभव करें कि वह विश्वव्यापी दिव्य शक्ति सुषुम्णा मार्ग से नीचे से ऊपर की ओर बढ़ रही है।
- इस दिव्य प्रकाश का ऊर्ध्वगमन पहले चारों चक्रों को भेदते हुए विशुद्धि चक्र की ओर हो रहा है।
- अब कंठ कूप के ठीक पीछे रीढ़ पर एक ऐसे कमल के फूल की आकृति को निहारें, जिसकी सोलह पंखुड़ियाँ हैं, जिनका रंग नीला है तथा ये एक श्वेत चक्र के इर्द गिर्द फैली हुई हैं।
- साधक अपनी अन्तरंग साधना को परिपक्व बनाने के लिये इस चक्र के बीज मन्त्र **हं** का अभ्यास करता है और अभ्यास को और अधिक लम्बा व गहरा करने के लिए वह सोलह दल अक्षरों का अभ्यास करते हुए कमल के फूल की सोलह पंखुड़ियों से निकलने वाले स्पंदन को अनुभव करता है।

©DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

लाभ–

- भौतिक शरीर में इस चक्र के आसपास के अवयवों व ग्रन्थियों को ऊर्जा मिलने से उनके दोष ठीक होते हैं, जैसे थायराईड, पैराथायराईड, टोनसिल्ज, कान, नाक, आँख, दांत तथा जिह्वा आदि के दोष ठीक होते हैं। Pharyngeal plexus से निकलने वाली सभी स्नायु प्रभाव में आती हैं।
- जहाँ विशुद्धि चक्र पर अभ्यास करने से साधक के स्थूल शरीर के लाभ होते हैं, वहीं मन शान्त होने पर मानसिक एकाग्रता का स्तर काफी ऊँचा होता है।
- जब साधक का इस चक्र पर अभ्यास पक जाता है अर्थात् जब वह देर तक इस चक्र पर ध्यान लगाकर इसके बीज मन्त्र 'हं' का अभ्यास करता है तो उसके स्थान का केन्द्र इस चक्र पर कमल के फूल के मध्य निर्मित श्वेत वृत्त होता है, जिसके मध्य वह सोम चक्र से सोम रस की सफेद रंग की टपकती हुई बूँदों का रस आस्वादन करता है जो कि उसके अन्त:करण को पवित्र करने वाली होती हैं।
- यह अवस्था को पा लेने के पश्चात् ही एक साधक के लिए ध्यान में जाना सहज हो जाता है।

4.3.6 आज्ञा चक्र साधना

६. आज्ञाचक्र

आज्ञा चक्र (Medula Plexus)– अन्य पाँच चक्रों की भाँति शरीर में सुषुम्णा नाड़ी पर दोनों भोहों के मध्य अर्थात् भ्रूमध्य के ठीक पीछे मस्तिष्क के मध्य में मेरुदण्ड के शीर्ष पर त्रिकुटि में स्थित है। सांकेतिक रूप में स्थूल शरीर में यह चक्र मस्तिष्क गुहा जाल (carvernous plexus) के निकट स्थित है। इसका बीज वाहन नाद है, लोक तप: है, यह गुणातीत है और देवता लिंग शम्भु है। बीज मंत्र ॐ है। यह चक्र एक ऐसे कमल के फूल की आकृति लिये हुए है जिसकी दो सफेद पंखुड़ियाँ हैं, जिनके दल अक्षर **हं** और **क्षं** हैं। पंखुड़ियों का रंग सफेद है। ये दोनों पंखुड़ियाँ इड़ा व पिंगला नाड़ियाँ हैं। बाईं पंखुड़ी इड़ा तथा दाईं पिंगला नाड़ी का प्रतिनिधित्व करती है। इड़ा नाड़ी चन्द्रमा तथा पिंगला नाड़ी सूर्य का प्रतीक है। इन दोनों पंखुडियों के दल अक्षरों का अभ्यास करने पर द्वैत भाव की अनुभूति होती है। जब ये दोनों नाड़ियाँ इस चक्र पर सुषुम्णा में मिलती हैं, तब इस केन्द्र में प्रज्ञा एवं

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। इनसे निकलने वाली ध्वनि या स्पंदन को दल अक्षरों के रूप में दर्शाया गया है। सुषुम्णा मार्ग पर यह वह तीसरा स्थान है जहाँ पर इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा का एक बिन्दु पर मिलन होता है। अतः इसे **युक्त त्रिवेणी** भी कहते हैं। यहाँ पहुँचने पर साधक का मन पूरी तरह शान्त होता है। इस चक्र को ज्ञान चक्षु, त्रिवेणी, गुरु चक्र और शिव नेत्र भी कहते हैं। ध्यान की गहन अवस्था में शिष्य अपने गुरु और ईश्वर से आज्ञा व मार्गदर्शन इस चक्र के माध्यम से प्राप्त करता है।

साधना-विधि-

- साधक इस चक्र पर ध्यान लगाने के लिये पद्मासन में बैठें तथा दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में रखें।
- पाँच मिनट तक अपने पूरे शरीर तथा श्वासों का मानसिक अवलोकन करें।
- अब मूलाधार चक्र से आज्ञा चक्र तक नीचे से ऊपर की ओर गहरा लम्बा श्वास भरें। इसी प्रकार आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक गहरा लम्बा श्वास बाहर निकालें। चार से पाँच मिनट इसका अभ्यास करें। कुछ देर श्वासों को सामान्य कर शान्त कर लें।
- अब अपने ध्यान को, भ्रूमध्य के ठीक पीछे मस्तिष्क के मध्य में मेरुदण्ड से शीर्षपर मन को एकाग्र करें। वहाँ पर सफेद रंग की पंखुड़ियों वाले कमल के फूल की कल्पना करें।
- बाईं पंखुड़ी को इड़ा रूप में देखें और दाई को पिंगला रूप में देखें। उसके मध्य में पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा के आकार का सफेद वृत्त जिसके बीच में सुनहरा ऊँ अक्षर बीज मन्त्र के रूप में स्थित है। उस पर ध्यान लगाएँ। अब मधुर ध्वनि के साथ इस बीज मन्त्र का जप करें।
- जप करते-करते उसमें इतना रम जाएं कि आपको ऐसा लगने लगे कि मेरा रोम-रोम इस दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है।
- वास्तव में इस चक्र पर धारणा और ध्यान में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। धारणा करते-करते कुछ समय के बाद चित्त की एक ऐसी अवस्था बन जाती है, जब साधक को लक्षित वस्तु के अतिरिक्त देश, काल आदि का बोध नहीं रहता। यही ध्यान की अवस्था है। महर्षि पतंजलि इसी को इस प्रकार कहते हैं-**'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'**- जिस लक्षित वस्तु में चित्त को लगाया जाय, उसी में एकतानता हो जाना या ध्येय वस्तु के साथ तदाकार हो जाना ध्यान है। दूसरे शब्दों में ''चित्त का ध्येय वस्तु से क्षणमात्र के लिए भी विचलित न होकर

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

धारावत् प्रवाह बनना'' ध्यान है।

- कुछ देर बाद शान्त हो कर यथास्थिति में मौन व शान्त अवस्था का आनन्द लें। धीरे-धीरे सामान्य स्थिति में लौटें। लेकिन यह ध्यान रहे कि अब यह अवस्था धारणा को ध्यान में बदलने की है। यह धारणा की प्रगाढ़ अवस्था है, जिसे योगी ध्यान की अवस्था कहते हैं।

लाभ-

- इस समय हमारे शरीर में स्थूल व सूक्ष्म स्तर पर बहुत से परिवर्तन आ रहे होते हैं, जो मानव के शारीरिक व मानसिक दोषों को तो ठीक करते ही हैं, जैसे कि स्थूल रूप में इसी स्थान पर हमारे मस्तिष्क में पीनियल व पिच्युटरी ग्रन्थियाँ हैं जो कि शरीर की अन्य ग्रन्थियों से निकलने वाले स्रावों को भी नियन्त्रित करती हैं।
- इस चक्र के जागृत होने पर ये दोनों ग्रन्थियाँ शरीर की अन्य ग्रन्थियों से निकलने वाले स्रावों के बीच सन्तुलन बना कर हमारे चय-अपचय को ठीक बनाती हैं और हमें स्वास्थ्य लाभ मिलता है। यहीं से हमारे शरीर की केन्द्रीय प्रणाली (Central Nervous System) की शुरुआत होती हैं।
- इस चक्र पर ध्यान लगाने से हमारे सम्पूर्ण शरीर का स्नायु तन्त्र ठीक प्रकार से कार्य करता है जो कि शरीर की सभी प्रणालियों, अवयवों तथा अंगों को प्रभावित करता है।
- इस चक्र के जागृत होने पर मन स्थिर व शान्त बनता है और प्राण पर पूरा नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। यह दिव्य दृष्टि, दूर श्रवण एवं दूर संवेदन जैसे अतीन्द्रिय क्षमताओं को प्रदान करने वाला चक्र है। इसके जागृत होने पर चेतना की अतल गहराइयों का अतीन्द्रिय द्वार खुल जाता है।
- इस अवस्था में साधक की बुद्धि, स्मृति तथा एकाग्रता जैसी मानसिक क्षमताओं का विकास होता है और इसके अतिरिक्त साधक का आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त होता है।
- जब भी हम ध्यान की अवस्था से बाहर आते हैं तो हमें अपने आपको पहले प्रयास से शान्त रखना है, कुछ समय पश्चात् यह धीरे-धीरे स्वभाव से होने लगेगा जो कि सच्चे ध्यान की ओर संकेत है।

4.3.7 सहस्रार चक्र साधना

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सहस्रार चक्र, चक्रों की शृंखला में अन्तिम और सातवाँ चक्र है। यह सुषुम्णा नाड़ी के अन्तिम छोर पर मस्तिष्क के ऊपरी भाग ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। ब्रह्मरन्ध्र का निवास स्थान सूक्ष्म शरीर में स्थित है। सहस्रार चक्र एक द्वंद्वरहित चक्र है क्योंकि यह शून्य तत्त्व प्रधान है। अर्थात् यह तत्त्वातीत है। इसका बीजमन्त्र अर्थात् तत्त्वबीज विसर्ग (परम शिव) है। इसका बीजवाहन बिन्दु है, देवता परब्रह्म तथा लोक सत्यं है। इसे भगवान शिव का स्थान माना गया है। जब ध्यान में साधक की कुण्डलिनी जागृत हो कर सहस्रार चक्र में शिव-शक्ति के साथ इसका एकाकार होता है, तब योगी परम आनन्द की अनुभूति करता है। जब कुण्डलिनी जागृत रूप में इस केन्द्र पर पहुँचती है तो साधक सर्वोच्च चेतना की स्थिति में होता है ओर उसे सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सहस्रार चक्र से अभिप्राय एक ऐसे कमल के फूल से है, जिसकी पंखुड़ियों की संख्या एक हजार है, जो बहुरंगी हैं और ये 20 परतों में सुनियोजित ढंग से एक वृत्त का आकार बनाती हैं। एक परत में 50 पंखुड़ियाँ हैं। इसका ऊपरी भाग सुनहरे रंग का है। इसका अपना कोई वर्ण नहीं है। इस चक्र पर अभ्यास के लिए **अं** से **क्षं** तक सभी 50 दल अक्षरों का बारम्बार अभ्यास किया जाता है। इसका अपना कोई तत्त्व नहीं है, इस चक्र पर देव शक्ति महाशक्ति है। इसका यंत्र निराकार पूर्ण चन्द्र है। इस चक्र पर ध्यान लगाने का फल बन्धन मुक्ति है। इसके मध्य में एक वृत्ताकार चन्द्रमा है जिसके मध्य नीचे की ओर उल्टा त्रिभुज है। मस्तिष्क के आवरण तथा केन्द्रिय स्नायु प्रणाली से होती हुई 72000 नाड़ियों में से एक हजार नाड़ियाँ यहाँ आकर मिलती हैं। कई बार इस चक्र की पंखुड़ियों की संख्या के विषय में भिन्नता पाई जाती है, पर एक मत पर सभी सहमत होते दिखाई देते हैं कि इस केन्द्र से निकलने वाली नाड़ियाँ असंख्य हैं। सुषुम्णा नाड़ी पर स्थित विभिन्न चक्रों पर संस्कृत के 50 अक्षरों के रूप में प्रतिनिधित्व करने वाले दल अक्षरों का जाप करने पर वहाँ से निकलने वाली नाड़ियों में स्पंदन पैदा होता है। यह ध्यान का सूक्ष्म केन्द्र है। सहस्रार चक्र को अन्य छः चक्रों का प्रधान माना जाता है। अन्य सभी चक्रों का स्वाभाविक सम्बन्ध इसी चक्र से है।

सातवें चक्र पर ध्यान लगाने पर कुण्डलिनी पूर्ण रूप से जागृत होती है। कुण्डलिनी का सम्बन्ध सूक्ष्म प्राण से है। सूक्ष्म प्राण का सम्बन्ध चक्रों और सूक्ष्म नाड़ियों से है। सूक्ष्म नाड़ी का सम्बन्ध मन से है। मन का सम्बन्ध पूरे शरीर से है जो कि शरीर की प्रत्येक कोशिका में स्थित है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

प्राण शरीर में एक ऊर्जा के रूप में कार्य करता है। यह गतिशील है। यह स्थिर शक्ति प्राणायाम तथा अन्य योग की क्रियाओं से गतिशील बनती है। यहाँ पर स्थिर शक्ति कुण्डलिनी की सुप्त अवस्था तथा गतिशील शक्ति कुण्डलिनी की जागृत अवस्था को दर्शाती है।

साधना–विधि–

- पद्मासन में बैठे। सामान्य श्वासों को दो तीन मिनट साक्षी भाव से देखें। अब पैर के अंगूठे से सिर की चोटी तक पूरे शरीर का तीन से चार मिनट तक मानसिक अवलोकन करें।
- रीढ़ पर सुषुम्णा मार्ग की यात्रा करते हुए मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक जाएं।
- अब ब्रह्मरन्ध्र में 1000 दल वाले एक ऐसे कमल के फूल की कल्पना करें, जिससे सुनहरे रंग का प्रकाश चारों ओर से निकल रहा है। साधक सर्वप्रथम बाहरी वृत्त के पचास दल अक्षरों का वाणी से वाचक जाप करता है और इस प्रकार इसे बीस बार दोहराता हुआ अन्त में मानसिक जाप तथा ध्यान की प्रगाढ़ अवस्था में पहुँच उसकी अन्तिम स्थिति में साधक असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करता है।
- सहस्रार चक्र पर ध्यान लगाने के लिए साधक को यह अनुभव करना चाहिए कि इस चक्र की हजारों पंखुड़ियों से निकलने वाली अनगिनत स्वर्ण रश्मियाँ शरीर और मन को शून्य करती जा रही हैं अर्थात् उनके अस्तित्व को मिटाती जा रही हैं।

लाभ

- सहस्रार चक्र पर अभ्यास करते-करते एक ऐसी स्थिति बनने लगती है कि साधक को ऐसा अनुभव होता है कि न अब शरीर है और न मन। केवल शुद्ध चेतना मात्र है- सत्, चित्, आनन्द।
- सिद्ध पुरुषों की यह अनुभूति है कि साधक इस चक्र पर सिद्धि प्राप्त करके बंधन मुक्त हो जाता है। इस साधना में निपुण होने पर साधक त्रिकालदर्शी बन जाता है।
- सहस्रार चक्र की साधना में कुण्डलिनी का अपना अलग अस्तित्व समाप्त हो जाता है अर्थात् वह परमशिव में लीन हो जाती है। यह साधक की निर्विकल्प, असम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति है। इसे निर्बीज समाधि भी कहा जाता है।
- यहाँ पर जन्म-मृत्यु, ज्ञान-अज्ञान, शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, बुरा-भला सदा के लिये समाप्त हो जाते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- यह स्थिति साधक की कुछ इस प्रकार की है जैसे- जब पानी की बूँद समुद्र में समा जाती है तो वह समुद्र से अभिन्न हो जाती है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए कबीर जी कहते हैं-

  हेरत हेरत हे सखी, रहया कबीर हेराय।

  बूँद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाय।। कबीर ग्रन्थावली

इस पद्य में कबीर ने बूँद को समुद्र में समाने की बात कहते हुए आगे यह भी कहना चाहते हैं कि शायद यह कहना ठीक नहीं कि पानी की बूँद समुद्र में समा गई। शायद समुद्र ही बूँद में समा गया अर्थात् बूँद स्वयं समुद्र बन गई इसलिये दूसरे पद में कबीर कहते हैं-

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराय।

समुद्र समाना बूँद में, सो कत हेरा जाय।।

अर्थात् बूँद का समुद्र में मिलने के बाद यह बतलाना कठिन है कि समुद्र में बूँद समाई कि बूँद में समुद्र। पर एक बात अवश्य निश्चित है कि पानी की बूँद और समुद्र के बीच एकाकार की स्थिति पैदा हो गई, जिससे कि उनको भिन्न-भिन्न रूप में नहीं देखा जा सकता।

सहस्रार चक्र पर सिद्धि प्राप्त होने पर भी साधक की अन्तिम सर्वोच्च सद्वृत्ति, जो उसे उस गुणातीत परमतत्त्व से साक्षात् करवाती है। अन्त में उसका विलय भी उस विश्वव्यापी चैतन्य ज्योति में हो जाता है, जिसे हम परम आनन्द की स्थिति कहते हैं।

4.4 सारांश

छात्रों को सुषुम्णा नाड़ी की महत्ता, उसके भीतर तीन शक्तिशाली नाड़ियों के केन्द्रों का वर्णन करने के उपरान्त स्पष्ट हो गयी होगी। वास्तव में ब्रह्माण्ड में जितनी शक्तियाँ विद्यमान हैं, उन सबको ईश्वर ने इस शरीररूपी पिण्ड में एकत्रित कर दिया है, किन्तु सुषुम्णा नाड़ी मेरुदण्ड के भीतर होती हुई ऊपर की ओर चलती है। साधारण अवस्था में उस नाड़ी का मुख बन्द रहता है, इसी कारण इसकी शक्ति विकसित नहीं हो पाती है और प्राणशक्ति केवल इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों के द्वारा ऊपर की ओर चक्रों को छूती हुई चलती है, सारे शरीर में प्रवाहित होती रहती है। इसी शरीर में एक अतिसूक्ष्म विद्युत् समान अद्भुत दिव्यशक्ति वाली सुषुम्णा नाड़ी लिपटी हुई पड़ी है। यह नाड़ी बिना प्रयोग के सोई हुई-सी पड़ी रहती है। इसी सुप्त पड़ी हुई ऊर्जा को हम प्राण-साधना या ध्यान के द्वारा जागृत करके अपने जीवन को उज्ज्वल कर सकते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

गुदाद्वार – मलद्वार
सुषुम्णा नाड़ी – रीढ़ की हड्डी में स्थित नाड़ी
अस्थि – हड्डी
सूक्ष्म शरीर – प्राण, ज्ञानेन्द्रियाँ, सूक्ष्मभूत, मन तथार बुद्धि का समुदाय
भ्रूमध्य – दोनों भौहों के बीच का मस्तक
नासापुट– नासिका का छिद्र
मूलाधार – रीढ़ की हड्डी का अन्तिम छोर
द्रष्टा – देखने वाला

4.6 संदर्भ-ग्रन्थ

- स्वामी देवव्रत सरस्वती, *अष्टांग योग*, आर्षयोग संस्थान, मिर्जापुर, फरीदाबाद, हरियाणा।
- *पातञ्जलयोगप्रदीप*, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, गीताप्रेस गोरखपुर
- प्रो. ज्ञानशंकर सहाय, *हठयोग प्रदीपिका*, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

4.7 बोध-प्रश्न एवं अभ्यास-प्रश्न

बोध प्रश्न

1. रीढ़ की हड्डी में तीन प्रमुख नाड़ियाँ कौन-कौन सी हैं?
2. सरस्वती नाड़ी का मूल नाम क्या है?
3. मूलाधार चक्र कहाँ पर स्थित होता है?
4. 'युक्त त्रिवेणी' किस स्थान को कहते हैं?
5. नाभि के ठीक पीछे कौन सा चक्र होता है?
6. सिर के ऊपरी भाग पर स्थित चक्र का क्या नाम है?

अभ्यास प्रश्न

1. चक्र-साधना पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
2. मूलाधार-चक्र पर ध्यान करने की विधि बताइए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/University of Delhi

3. सुषुम्णा-नाड़ी की महत्ता को स्पष्ट कीजिए।
4. मणिपुर-चक्र का स्थान बताते हुए उस पर ध्यान लगाने से होने वाले लाभों का विवरण दीजिए।
5. निम्न में से किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखिए-

   (क) युक्तत्रिवेणी (ख) सहस्रार चक्र

   (ग) स्वाधिष्ठान-चक्र (घ) अनाहत-चक्र।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ-5
आसन : सामान्य परिचय

डॉ. अर्पित कुमार दुबे
सहायक आचार्य (संस्कृत)
मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान ,नई दिल्ली
गुरु गोबिन्द सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय,द्वारका,नई दिल्ली

संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 आसन: अर्थ एवं परिभाषाएँ
5.4 आसनों का उद्देश्य
5.5 आसनों का वर्गीकरण
  5.5.1 आसनों की प्रकृति के अनुसार
  5.5.2 आसनों की स्थिति के अनुसार
  5.5.3 आसनों की जटिलता के अनुसार
5.6 हठ प्रदीपिका में वर्णित 15 आसन
5.7 आसन के लाभ
5.8 आसन के सिद्धांत
5.9 सारांश
5.10 पारिभाषिक शब्दावली
5.11 पाठ्य-प्रश्नों के उत्तर
5.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
5.13 संदर्भ ग्रंथ
5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी–

- आसन के अर्थ एवं परिभाषाओं को समझ सकेंगे।
- आसनों के उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- आसनों के वर्गीकरण को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित 15 आसनों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- आसनों के सिद्धांतों से परिचित होंगे।
- आसनों के लाभों को समझ पाएंगे।

5.2 प्रस्तावना

योग का मुख्य लक्ष्य मन की उच्च एकाग्र अवस्था (ध्यान) या समाधि को प्राप्त करना है और ध्यान के अभ्यास का जो प्रथम अनिवार्य अंग है वह आसन अर्थात् बैठने की अवस्था विशेष है। योग की परंपरा, मुख्यतः हठयोग, के अंतर्गत आसनों का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आसनों का अभ्यास साधक को स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार से प्रभावित करता है। ऋषियों ने जब इन अभ्यासों का प्रयोग किया तो पाया कि आसनों का अभ्यास मात्र शारीरिक सौष्ठव प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं है, वरन् इनका अभ्यास श्वास एवं मन पर भी नियंत्रण स्थापित करने में अत्यधिक सहायक है। आसनों का अभ्यास शरीर में उस आवश्यक दृढ़ता का विकास करता है जो कि योग के अन्य उच्च अभ्यासों जैसे - प्राणायाम, धारणा एवं ध्यान के लिए अति आवश्यक है।वर्तमान समय में किए जा रहे विभिन्न शोध आसनों के चिकित्सकीय प्रभावों पर भी प्रकाश डाल रहें है जिसके चलते आसनों का उपयोग विभिन्न रोगों के निवारण के लिए भी किया जा रहा है।योग के विषय के सामान्य और विशेष ज्ञान के लिए यह अति आवश्यक है कि आसनों का अध्ययन एवं अभ्यास किया जाए जिससे आसनों के वास्तविक अर्थ एवं प्रभावों को समझा जा सके।

5.3 आसन – अर्थ एवं परिभाषाएँ

आसन शब्द का अर्थ :आसन शब्द के परिस्थिति अनुसार अनेकानेक अर्थ किए जाते है जैसे बैठनाअथवा बैठने का ढ़ंग, वह वस्तु जिसके ऊपर बैठा जा सके आदि। यदि हम आसन शब्द की व्युत्पत्ति देखें तो यह संस्कृत व्याकरण के **अस्** धातु से हुई है जिसका अर्थ है बैठना। परंतु यहाँ अस् धातु के दो अर्थ दिए गए है।पहला,जिस पर हम बैठते है अर्थात् कोई चटाई, मृगछाल गद्दी इत्यादि, और दूसरी हमारी स्थिति। शारीरिक स्थिति से अर्थ इस प्रकार है कि जब एक विशेष प्रकार की शारीरिक स्थिति बनाई जाती है तो वह किसी वस्तु की द्योतक होती है जैसे धनुरासन में शरीर की स्थिति धनुष के समान होती है तथा मयूरासन में शरीर मयूर के समान प्रतीत होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

यदि व्यवहारिक रूप से देखें तो प्रत्येक व्यक्ति, यहाँ तक की जीव-जन्तु भी सदैव आसनों का अभ्यास करते हैं। अपने प्रतिदिन के क्रियाकलापों में हम विभिन्न कार्यों को करने के लिए भिन्न-भिन्न शारीरिक स्थितियों का प्रयोग करते हैं। जैसे यदि हम गाड़ी से यात्रा कर रहे है तो एक विशेष प्रकार की स्थिति में बैठकर ही हम यात्रा कर सकते हैं। इसी प्रकार विभिन्न जानवर अपनी दैनिक क्रियाओं जैसे जल एवं भोजन ग्रहण करना अथवा विश्राम करने के लिए अपने शरीर को एक निश्चित आसन में स्थित करते हैं। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि हम सदैव ही आसनों से प्रभावित रहते हैं ।

प्रिय विद्यार्थियों आशा है की आप आसनों का अर्थ अब समझ चुके होंगे। अब हम विभिन्न ग्रंथों द्वारा आसन की दी गई परिभाषाओं पर चर्चा करेंगे।

परिभाषाएँ -विभिन्न योग ग्रंथों एवं ऋषि-मुनियों द्वारा आसन को परिभाषित किया गया है जैसे–

1. **महर्षि पतंजलि (योगसूत्र) के अनुसार –**

   स्थिरं सुखमासनम् (2/46 योगसूत्र)

   अर्थात् निश्चल सुखपूर्वक बैठने का नाम ही आसन है।

   महर्षि पतंजलि को योग का प्रणेता माना जाता है एवं उनके द्वारा रचित योगसूत्र ग्रंथ भी योग के शीर्ष ग्रंथों में से प्रमुख है। इस सूत्र के माध्यम से महर्षि यही बताना चाहते हैं कि जब साधक किसी भी स्थान पर सुखपूर्वक होकर, बिना किसी शारीरिक अथवा मानसिक चंचलता के, एकाग्र होकर जिस भी शारीरिक अवस्था को धारण करता है, वही आसन है।

2. **श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार -**

   तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।

   उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ (6.12)

   समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

   संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ (6.13)

   अर्थात् आसन पर दृढ़तापूर्वक बैठ कर मन को शुद्ध करने के लिए सभी प्रकार के विचारों तथा क्रियाओं को नियंत्रित कर मन को एक बिन्दु पर स्थिर करते हुए साधना करनी चाहिए। शरीर, गर्दन और सिर को सीधा रखते हुए और आँखों को हिलाए बिना नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर करनी चाहिए। यही स्थिति आसन कहलाती है।

3. **त्रिशिखब्राह्मण उपनिषद के अनुसार –**

   सर्ववस्तुन्युदासीनभावमासनमुत्तम् (2/29) अर्थात् समस्त वस्तुओं में उदासीन भाव ही सर्वश्रेष्ठ आसन है।

4. **तेजबिन्दु उपनिषद के अनुसार -**

   सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम्। (1/25)

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक बैठ कर ब्रह्म का चिंतन किया जा सके वही आसन है। इस परिभाषा के माध्यम से आसन के विषय में यह स्पष्ट किया जा रहा है कि आसन मात्र शारीरिक अवस्था नहीं है अपितु जिस भी स्थिति में सुखपूर्वक बैठकर उस एक तत्त्व ब्रह्म (पूर्णता) का निरंतर चिंतन किया जा सके वही आसन है।

5. **आचार्य नारायण तीर्थ के अनुसार** - जो स्थिर निश्चल और सुखकर होता है वह आसन है। इन विविध परिभाषाओं का अध्ययन कर हम कह सकते हैं कि आसन शरीर और मन की एक सहज अवस्था है जिसमे साधक लंबे समय तक ठहर कर अपनी चेतना का विकास कर सकता है।

पाठ्य-प्रश्न

1. आसन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत व्याकरण की________ धातु से हुई है।
2. आसन का सामान्य अर्थ बैठना अथवा बैठने का ढंग या वह वस्तु जिसके ऊपर बैठा जा सके होता है। सही/गलत
3. महर्षि पतंजलि के अनुसार निश्चल एवं ________बैठने का नाम ही आसन है।
4. त्रिशिख ब्राह्मण उपनिषद के अनुसार सर्वश्रेष्ठआसन है-

   क) समस्त वस्तुओं में उदासीन भाव ख) सुखपूर्वक बैठना

   ग) शारीरिक अवस्था घ) बैठने का स्थान

5.4 आसनों का उद्देश्य

आसनों के भौतिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्य निम्न बिंदुओं द्वारा समझे जा सकते हैं -

1) आसन का प्रमुख उद्देश्य साधक को शारीरिक और मानसिक रूप से दृढ़ता प्रदान करना है जिससे वह अपनी साधना के उच्च चरणों को बिना किसी शारीरिक अवरोध के प्राप्त कर सके।

2) आसन के द्वारा लाघवता (हल्कापन) प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है ताकि साधक लंबे समय सहज रूप से अपनी साधना कर सके।

3) आसन द्वारा शरीर एवं मन के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। शरीर और मन एक दूसरे के पूरक है, जब शरीर स्वस्थ रहता है तो मन भी स्थिर रहता है और मन के सुखी रहने से शरीर में रोग उत्पन्न नहीं होते।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

4) आसनों को करने का एक उद्देश्य हमारे शरीर में फैली 72000 नाड़ियों की शुद्धि भी है। नाड़ियों के शुद्ध रहने से शरीर में प्राण (वायु) का प्रवाह सुचारु रूप से बना रहता है जो उत्तम स्वस्थ के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

5) आसनों के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता को भी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।जब साधक लंबे समय तक एक आसन में स्थिर रहता है तो उसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है और मन की अस्थिरता में भी कमी आती है।

6) आसनों का उद्देश्य शरीर को स्फूर्ति, लचीलापन एवं शक्ति प्रदान करना भी है।

7) आसनों के शारीरिक अभ्यासों द्वारा श्वासों पर भी नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।

8) आसनों का उद्देश्य स्वास्थ्य के सभी आयामों की पूर्ति करते हुए सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति कराना है।

इन सभी उद्देश्यों की समीक्षा कर हम यह समझ सकते हैं कि आसन हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने के लिए कितने महत्वपूर्ण है। अब हम आसनों के वर्गीकरण की चर्चा करेंगे।

पाठ्य-प्रश्न

1. आसनों का उद्देश्य शरीर को शारीरिक एवं मानसिक ________ प्रदान करना है।
2. आसन द्वारा शरीर एवं ________ के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है।
3. आसन का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता प्रदान करता है। सही/गलत
4. आसन के अभ्यास द्वारा श्वासों को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। सही/गलत

5.5 आसनों का वर्गीकरण

आसनों को मुख्यतः 3 प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. **आसनों की प्रकृति के अनुसार**
2. **आसन करने की स्थिति के अनुसार**
3. **आसनों की जटिलता के अनुसार**

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

5.5.1 आसनों की प्रकृति के अनुसार–

महर्षि घेरण्ड के अनुसार आसनों को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है -

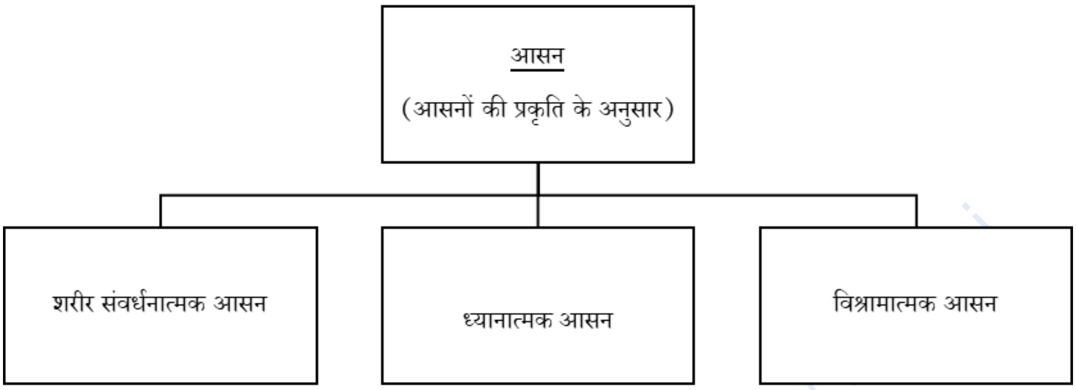

1. **शरीर संवर्धनात्मक आसन** -जैसा किनाम से ही स्पष्ट हो रहा है, शरीरसंवर्धनात्मक आसन मांसपेशियों में सकारात्मक तनाव एवं खिंचाव लाते हैं जिनके अभ्यास से शरीर में प्राण ऊर्जा का संचार बढ़ता है, रक्त शरीर की प्रत्येक कोशिका तक पहुँच कर आवश्यक पोषक तत्त्वों को पहुँचाता है जो शरीर को मजबूती प्रदान करने एवं क्रियाशीलता को बढ़ाने में अत्यधिक सहायक होते हैं । इन आसनों का महत्त्व स्वास्थ्य संरक्षण एवं रोगोपचार में भी है।अन्य शब्दों में ऐसा भी कहा जा सकता है की जिन आसनों से शारीरिक सौष्ठव बढ़े एवं स्वास्थ्य वृद्धि हो वही शरीर संवर्धनात्मक आसन है।इन आसनों में निम्नलिखित आसन सम्मिलित है -

1) गरुड़ासन
2) वृक्षासन
3) गोमुखासन
4) मत्स्येंद्रासन
5) सिंहासन
6) कुक्कुटासन
7) मण्डूकासन
8) उत्तान मण्डूकासन
9) पश्चिमोत्तानासन
10) उत्कट आसन
11) मयूरासन
12) उष्ट्रासन
13) संकटासन
14) कूर्मासन
15) उत्तानकूर्मासन
16) शलभासन
17) भुजंगासन
18) धनुरासन
19) मत्स्यासन

2. **ध्यानात्मक आसन**-जिन आसनों में साधक अपने योगाभ्यास के उच्च चरणों, जैसे प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का अभ्यास करने के लिए अपने शरीर एवं मन को स्थिर करने का प्रयास करता है वे ध्यानात्मक आसन कहलाते हैं। जैसा कि नाम से भी स्पष्ट है कि ये

© DDCE/COL/SOL/University

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

आसन ध्यान इत्यादि उच्च अभ्यासों के लिए उपयुक्त है जिनमे शरीर के तल पर न्यूनतम गतिविधियाँ घटती हैं ताकि साधक चेतना की उच्च अवस्था को प्राप्त हो। इन आसनों में निम्नलिखित आसन सम्मिलित है -

1) पद्मासन
2) सिद्धासन
3) भद्रासन
4) मुक्तासन
5) स्वस्तिकासन
6) वज्रासन

3. **विश्रामात्मक आसन** -इन आसनों का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक थकान को दूर करने के लिए किया जाता है। विश्राम का अर्थ ही है आराम, अर्थात् इन आसनों के अभ्यास से साधक एक गहरे विश्राम की अवस्था को प्राप्त होता है जो शारीरिक और मानसिक रूप से क्षय हुई ऊर्जा का पुनः निर्माण कर साधक को ऊर्जावान बनाता है। इन आसनों का अभ्यास अन्य अभ्यासों की अपेक्षा अत्यधिक सुगम है। ये अभ्यास शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा उत्पन्न नहीं करते जिसके चलते प्रत्येक व्यक्ति इन अभ्यासों को अपनाकर इनका लाभ ले सकता है, बल्कि अन्य कठिन आसनों को करने के पश्चात् विश्रामात्मक आसनों का अभ्यास सामान्य अवस्था में पुनः लौटने के लिए भी अत्यधिक सहायक है। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित आसनों का वर्णन आता है –

1) शवासन
2) मकरासन

5.5.2 आसन करने की स्थिति के अनुसार-आसन करने की स्थिति अर्थात् खड़े होकर किए जाने वाले अभ्यास अथवा बैठ कर किए जाने वाले अभ्यास अथवा लेट कर किए जाने वाले अभ्यासों के आधार पर भी आसनों का वर्गीकरण किया जाता है।

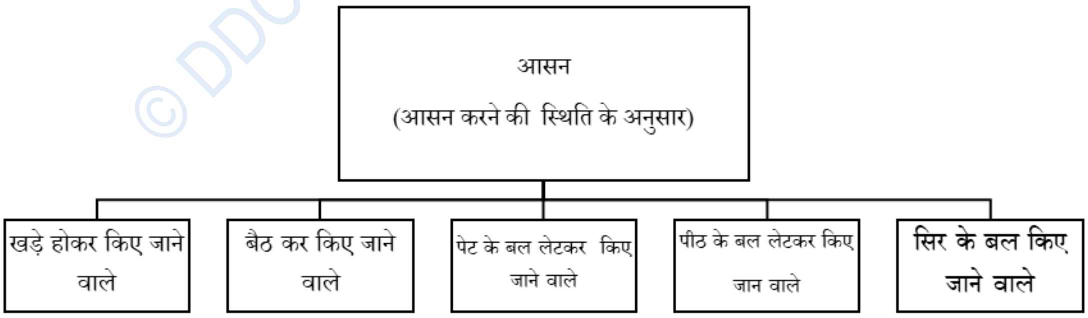

1. **खड़े होकर किए जाने वाले आसन** -जैसा की नाम से ही स्पष्ट है कि इन आसनों के समूह में वे सभी आसान जो खड़े होकर किए जाते हैं, सम्मिलित हैं। ये अभ्यास खड़े होकर आगे, पीछे एवं दायें-बाएँ झुक कर किए जाने वाले हैं। ये आसन निम्नलिखित हैं -

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

1) ताड़ासन
2) तिर्यक्ताड़ासन
3) कटिचक्रासन
4) पादहस्तासन
5) अर्ध चक्रासन
6) त्रिकोणासन
7) गरुड़ासन
8) नटराजासन
9) वीरभद्रासन
10) हसत्पादअंगुष्ठ आसन आदि

2. **बैठ कर किए जाने वाले आसन** -इस प्रकार के आसनों में बैठ कर कमर को आगे व पीछे की ओर मोड़ना एवं दायें-बाएँ झुकना सम्मिलित है।सभी ध्यानात्मक आसन भी बैठ कर करने वाले आसनों के अंतर्गत ही है।इन आसनों का विवरण इस प्रकार है -

1) पद्मासन
2) सिद्धासन
3) गोमुखासन
4) पश्चिमोत्तानासन
5) मत्स्येंद्र आसन
6) वज्रासन
7) दंडासन
8) मण्डूकासन
9) वक्रासन
10) पूर्वोत्तानासन आदि।

3. **पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन** -इन आसनों का अभ्यास पेट के बल उल्टा लेट कर किया जाता है। पेट के बल लेटकर किए जाने वाले अभ्यासों के अंतर्गत निम्न आसन आते हैं -

1. भुजंगासन
2. धनुरासन
3. मकरासन
4. शलभासन
5. सर्पासन
6. मत्स्यक्रीडासन
7. बालासन

4. **पीठ के बल लेटकर किये जानेवाले आसन** -पीठ के बल लेट कर किए जाने वाले आसनों में निम्न आसन सम्मिलित हैं-

1. उत्तानपादासन
2. हलासन
3. मत्स्यासन
4. सेतुबंधासन
5. मर्कट आसन
6. कर्णपीड़ासन
7. शवासन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

5. **सिर के बल किए जाने वाले**-इन आसनों का अभ्यास सामान्य स्थिति से उल्टी अवस्था में किया जाता है अर्थात् सिर नीचे की ओर एवं पैर ऊपर की ओर।इन आसनों का अभ्यास करने के लिए शारीरिक बल एवं स्थिरता की आवश्यकता होती है इस कारण इनका अभ्यास अत्यधिक सावधानी के साथ करना चाहिए।इन अभ्यासों में निम्नलिखित आसन सम्मिलित हैं -

1. शीर्षासन
2. वृश्चिकासन
3. सर्वांगासन
4. सलम्ब शीर्षासन
5. अधोमुख वृक्षासन इत्यादि

5.5.3 आसनों की जटिलता के अनुसार -आसनों को उनकी जटिलता के अनुसार भी वर्गों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक आसन को करने के लिए एक निश्चित बल,लचीलापन एवं स्थिरता की आवश्यकता पड़ती है जो अलग-अलग आसनों के अनुसार अलग-अलग होती है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रभाव के स्तर पर उनमें कोई भेद है, प्रत्येक आसन योगाभ्यासी के लिए समान रूप से लाभकारी होता है।

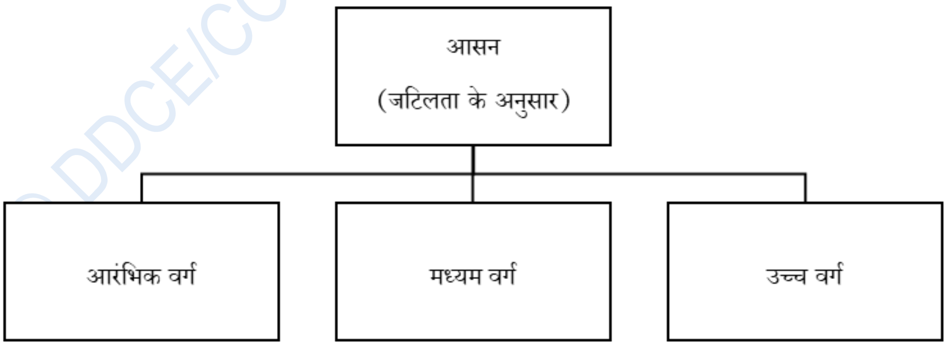

1. **आरंभिक वर्ग** -आरंभिक वर्ग के आसन करने में अति सुलभ होते हैं और नए अभ्यासियों के लिए उपयुक्त रहते हैं। नए अभ्यासियों को आरंभ में जटिल आसनों से बचना चाहिए।पहले आरंभिक वर्ग के आसनों पर दक्षता प्राप्त होने के पश्चात् ही अगले अभ्यासों की ओर अग्रसर होना चाहिए।इस वर्ग में निम्न आसन सम्मिलित हैं –

© DDCE/COL/SOL/ University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1) पवनमुक्तासन श्रृंखला
2) ध्यानात्मक आसन
3) ताड़ासन
4) तिर्यक् ताड़ासन
5) कटि चक्रासन
6) वज्रासन

2. मध्यम वर्ग -मध्यम वर्ग के आसन आरंभिक वर्ग की अपेक्षा थोड़े जटिल होते हैं । इस वर्ग के आसनों का अभ्यास आरंभिक वर्ग के आसनों पर पूर्णतः दक्षता प्राप्त करने के पश्चात् ही करना चाहिए।इन आसनों के अभ्यास के लिए अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता,बल एवं एकाग्रता की आवश्यकता पड़ती है।निम्नलिखित आसन इस वर्ग में सम्मिलित हैं -

1) पीछे की ओर झुक कर किए जाने वाले आसन (अर्ध चक्रासन, अर्ध उष्ट्रासन, धनुरासन इत्यादि)
2) आगे की ओर झुक कर किए जाने वाले आसन (पादहस्तासन, पश्चिमोत्तानासन, जानु शीर्षासन, कूर्मासन इत्यादि)
3) उल्टे होकर किए जाने वाले आसन (सर्वांगासन, शीर्षासन, अधोमुख श्वानासन इत्यादि)
4) संतुलनात्मक आसन (वृक्षासन, नटराजासन, गरुड़ासन इत्यादि)
5) कमर को घुमा कर किए जाने वाले आसन (वक्रासन, अर्ध मत्स्येंद्रासन, कटि चक्रासन इत्यादि)

3. उच्च वर्ग -इस वर्ग के आसन अपेक्षाकृत अधिक जटिल होते हैं। इन आसनों को करने के लिए शरीर की मांसपेशियों पर अत्यधिक नियंत्रण की आवश्यकता होती है,अतः इस वर्ग के आसनों का अभ्यास आरंभिक और मध्यम वर्ग के आसनों पर निपुणता प्राप्त करने के बाद ही करना चाहिए।साधक को इन आसनों को करने की शीघ्रता नहीं दिखनी चाहिए।अपने विवेक का उपयोग करते हुए यदि संभव हो तो एक अच्छे योग प्रशिक्षक की देख-रेख में ही इन आसनों का अभ्यास करना चाहिए।इस वर्ग में निम्नलिखित आसन सम्मिलित है -

1) अधोमुख वृक्षासन
2) मयूरासन
3) वृश्चिकासन

©DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

4) वकासन

5) अष्टावक्रासन

6) पूर्ण मत्स्येंद्रासन

पाठ्य-प्रश्न

1. महर्षि घेरण्ड द्वारा आसनों का विभाजन__________ भागों में किया गया है।
2. शवासन एक __________आसन है।
3. निम्न में से कौनसा आसन एक ध्यानात्मक आसन है –

   क) सिंहासन ख) कूर्मासन

   ग) पद्मासन घ) गरुड़ासन
4. मयूरासन में शरीर की आकृति __________ के समान हो जाती है।

5.6 हठप्रदीपिका में वर्णित 15 आसन

हठप्रदीपिका स्वामी स्वात्माराम द्वारा रचित हठयोग का अत्यधिक प्रमाणिक ग्रंथ है। स्वामी स्वात्माराम इस ग्रंथ में 15 आसनों का वर्णन करते हैं जिनकी विधि, लाभ और सावधानियों की चर्चा हम यहाँ विस्तार से करने जा रहे हैं —

1) स्वस्तिकासन -

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे।

ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते॥हठप्रदीपिका1/19॥

अर्थात् दोनों पाँव के तलुवे को घुटने और जंघा के बीच में अच्छी तरह स्थापित कर तथा शरीर को सीधा रखकर संतुलित रूप से बैठना -इसे स्वस्तिक आसन कहा जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सावधानियाँ –

- रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में यदि कोई समस्या हो तो इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- साइटिका रोग से पीड़ित व्यक्तियों को भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- यदि घुटनों में किसी प्रकार की समस्या है तो इस आसन को करने से बचना चाहिए।
- अनावश्यक प्रयत्न करने से बचना चाहिए।

लाभ –

- यह आसन प्राणायाम अथवा ध्यान जैसे उच्च अभ्यासों के लिए बहुत सहायक है।
- इस आसन का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक एकाग्रता को बढ़ाता है।
- इस आसन का नियमित अभ्यास मेरुदंड के लिए भी बहुत लाभकारी होता है।

2) गोमुखासन -

सव्ये दक्षिणगुल्फम् तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।

दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृति॥ हठप्रदीपिका1/20॥

अर्थात् दाहिनी एड़ी को कटी के वाम भाग में तथा उसी प्रकार बाएँ (एड़ी) को (कटि के) दायें भाग में रखकर गाय के मुख के समान आकृति बनाने से गोमुखासन होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सावधानियाँ –

- घुटनों की समस्या से ग्रसित लोगों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- यदि कंधों में जकड़न हो तो भी इस अभ्यास को करने के लिए किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए।
- मात्र पुस्तकों अथवा चलचित्रों को देख कर किसी भी आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- आसन करते समय प्रतिस्पर्धा का भाव नहीं रखना चाहिए।

लाभ –

- इस आसन का अभ्यास कंधे,वक्ष स्थल एवं कमर की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।
- श्वसन तंत्र को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।
- अस्थमा आदि श्वास संबंधित रोगों से पीड़ित लोग इस आसन से अवश्य लाभ पाते हैं और फेफड़ों की कार्यक्षमता को बढ़ा पाते हैं।
- इस आसन का अभ्यास पैरों में रक्त के प्रवाह को बढ़ाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

3) वीरासन -

एकं पादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुणि स्थिरम्।

इतरस्मिंस्तथा चोरुं वीरासनमितीरितम् ॥हठप्रदीपिका1/21॥

अर्थात् एक पाँव को दूसरी जंघा पर तथा दूसरे पाँव को अन्य जंघा के नीचे रखने से वीरासन होता है।

सावधानियाँ –

- पैरों या कमर से संबंधित किसी प्रकार के रोग से यदि ग्रसित है तो इस आसन का अभ्यास न करें।
- जोड़ों के दर्द जैसी अवस्था में भी इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- अपनी शारीरिक क्षमता का आँकलन करते हुए उसी के अनुसार अभ्यास को करना चाहिए।
- योग्य प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में ही आसन का अभ्यास करना चाहिए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

लाभ –

- इस आसन का नियमित अभ्यास शारीरिक और मानसिक स्थिरता को बढ़ाता है।
- इस आसन का अभ्यास पेट के आस पास के अंगों जैसी यकृत, वृक्क आदि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।
- यह आसन आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी अच्छा माना गया है।

4) कूर्मासन -

गुदं निरुध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः ।

कूर्मासनं भवेदेतदिति योगविदो विदुः ॥हठप्रदीपिका1/22 ॥

अर्थात् दोनों पाँवों की एड़ीपर गुदा को रखकर तथा पाँवों के अग्रभाग को बाहर की ओर फैलाकर रहना, इसे योग के जानकार कूर्मासन कहते हैं।

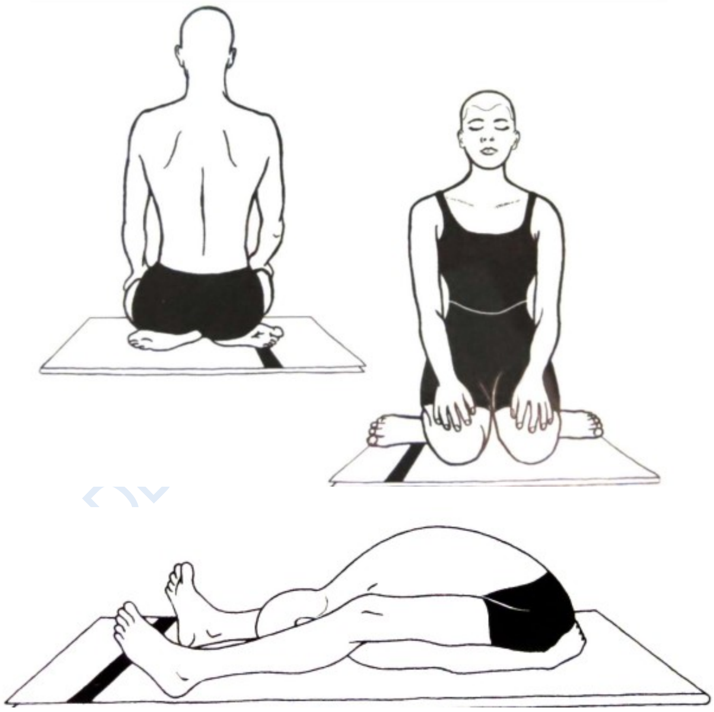

सावधानियाँ –

- यदि कमर में किसी प्रकार की कोई समस्या है तो इस आसन का अभ्यास कदापि नहीं करना चाहिए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- जब तक शरीर की माँसपेशियाँ लचीली न हो तबतक इस अभ्यास से बचना चाहिए।
- हर्निया से ग्रसित व्यक्ति को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।

लाभ –

- कूर्मासन का नियमित अभ्यास पाचन तंत्र के लिए बहुत लाभकारी है।
- इस आसन का अभ्यास साधक को अंतर्मुखी बनाने में सहायक है।
- इस आसन का अभ्यास मानसिक शांति प्रदान करता है एवं क्रोध को कम करता है।

5) कुक्कुटासन -

पद्मासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ ।
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम्॥हठप्रदीपिका1/23 ॥

अर्थात् पद्मासन लगाकर घुटनों और जंघाओं के बीच दोनों हाथों को डालकर हथेलियों को भूमि पर सुस्थिर कर उसी के बल शरीर को भूमि से ऊपर उठाकर स्थिर रखने से कुक्कुटासन होता है।

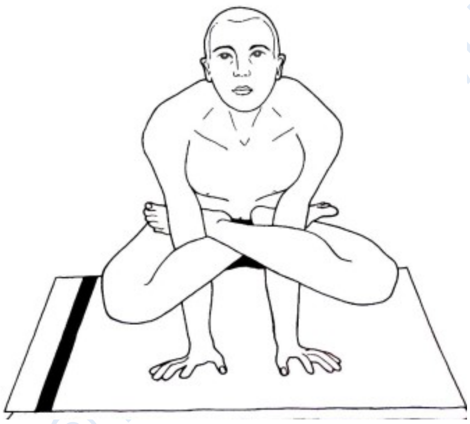

सावधानियाँ –

- इस आसन का अभ्यास करते हुए हाथों की मजबूती का विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। जब हाथों एवं कलाइयों में उपयुक्त बल आ जाए तभी इसका अभ्यास करना चाहिए।
- यदि शरीर का भार (वजन) बहुत अधिक है तो इस आसन को करने से पहले भार को कम करना आवश्यक है।
- अनावश्यक पीड़ा से बचने के लिए हाथों और पैरों पर यदि अतिरिक्त बाल है तो उन्हे साफ करने के पश्चात इस आसन का अभ्यास करना चाहिए ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

लाभ –

- यह आसन हाथों की माँसपेशियों के बल की वृद्धि में उपयोगी है।
- इस आसन का अभ्यास हृदय से संबंधित रोगों से बचने में भी सहायक है।
- इस आसन का अभ्यास शरीर में स्थिरता को बढ़ाता है।

6) उत्तानकूर्मासन -

कुक्कुटासनबन्धस्थोदोर्भ्यां सम्बध्यकन्धराम्।

शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम्॥हठप्रदीपिका1/24 ॥

अर्थात् कुक्कुटासन लगाकर दोनों हाथों से गले को पकड़कर कछुए के समान पीठ के बल लेट जाना, इसे उत्तानकूर्मासन कहते हैं।

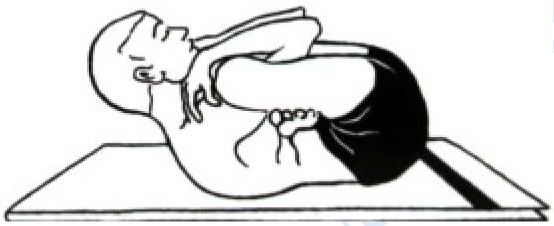

सावधानियाँ –

- यह आसन एक कठिन आसन है इसलिए जब शरीर अच्छी तरह से लचीला हो तभी इसका अभ्यास करना चाहिए।
- शरीर पर अत्यधिक चर्बी होने पर यह आसन करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- हाथ व पैरों से अतिरिक्त बालों को साफ कर लेना चाहिए।
- बिना प्रशिक्षक के संरक्षण के इस आसन को नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- यह आसन शारीरिक और मानसिक एकाग्रता बढ़ाता है।
- इस आसन का अभ्यास श्वसन तंत्र को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।
- यह आसन शरीर को संतुलन में रखने की क्षमता को बढ़ाता है।
- उद्विग्न (अशांत) मन को भी शांत करने के लिए यह आसन सहायता प्रदान करता है।

7) धनुरासन -

पादाङ्गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि ।

धनुराकर्षणंकुर्यात् धनुरासनमुच्यते ॥हठप्रदीपिका1/25॥

अर्थात्पेट के बल लेटकर दोनों पाँवों के अंगूठों को दोनों हाथों से पकड़कर पीठ की ओर से उन्हे कानों तक खींचकर धनुष के समान आकार दें। यह धनुरासन कहलाता है।

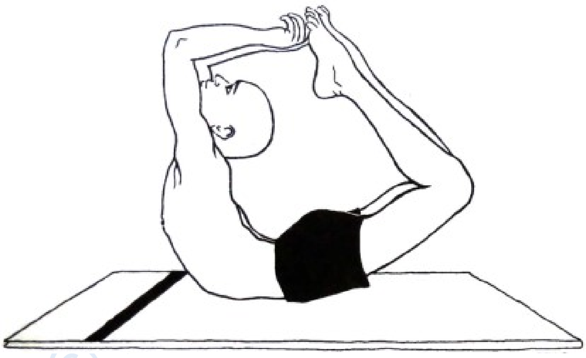

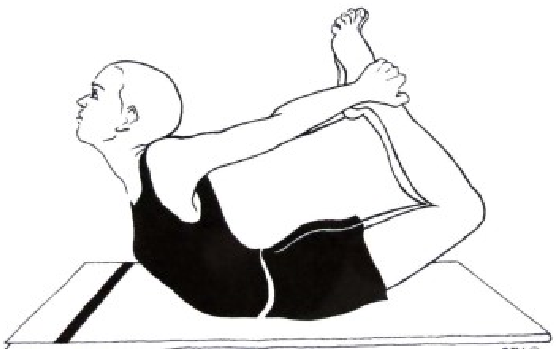

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सावधानियाँ –

- यह आसन कठिन आसनों की श्रेणी में आता है इसलिए पहले सरल अभ्यासों में दक्षता प्राप्त हो जाने के पश्चात् ही इसका अभ्यास करना चाहिए।
- गर्भवती महिलाओं के लिए यह अभ्यास पूर्णतः वर्जित है।
- हर्निया से पीड़ित व्यक्ति को भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
- यदि हाल ही में कोई ऑपरेशन हुआ हो तो भी इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- धनुरासन का अभ्यास पीठ की माँसपेशियों को सबल बनाता है।
- इस अभ्यास से कमर की जकड़न दूर होती है एवं कमर लचीली बनती है।
- इस आसन का अभ्यास उदर एवं श्वसन संबंधी रोगों में बहुत लाभ पहुँचाता है।
- मासिक धर्म से जुड़ी समस्याओं का निवारण भी इस अभ्यास के माध्यम से किया जा सकता है।
- शरीर में जमा अतिरिक्त चर्बी को भी दूर करने में यह अभ्यास सहायक है।

8) मत्स्येंद्रासन -

वामोरुमूलार्पितदक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम्।

प्रगृह्यतिष्ठेत् परिवर्तिताङ्गः श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात्॥ हठप्रदीपिका1/26॥

अर्थात् दाहिने पाँव को बायी जंघा के मूल में रखकर और बाएँ पाँव को दाहिने घुटने के बाहर से घेरते हुए शरीर को ऐंठन देकर मोड़ें। तब विपरीत हाथों से दोनों पाँवों को पकड़कर स्थिर रहना चाहिए।यह श्री मत्स्येंद्रनाथ का कहा हुआ आसन है इसलिए इसेमत्स्येंद्रासन कहा जाता है।

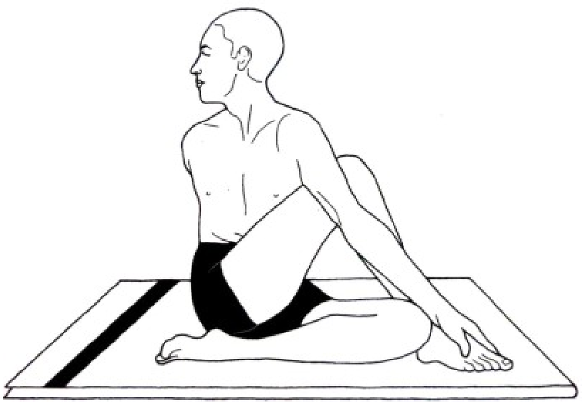

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सावधानियाँ –

- पेट से संबंधित रोग जैसेपेप्टिक अल्सर इत्यादि में इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- मासिकधर्म के दौरान भी इस अभ्यास को निषेध बताया गया है।
- गर्भवती महिलाओं को भी इस आसन का अभ्यास वर्जित है।
- हृदय संबंधी विकारों में भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- मधुमेह रोग के निवारण में यह आसन अत्यंत सहायक है।
- पाचन तंत्र का आवश्यक नियमन करने के लिए भी यह आसन बहुत सहायक है।
- कमर की जकड़न को दूर करता है।
- इस आसन का अभ्यास उत्सर्जन तंत्र के लिए भी बहुत लाभकारी है। यह वृक्कों की क्रियाशीलता को बनाए रखने में सहायक है।
- पीलिया रोग के निवारण में भी यह आसन सहायक माना गया है।

9) पश्चिमोत्तानासन -

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौदोर्भ्यां पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा ।

जानूपरिन्यस्तललाटदेशेवसेदिदंपश्चिमतानमाहुः॥हठप्रदीपिका1/26॥

अर्थात् दोनों पाँवों को भूमि पर दण्ड के समान फैला कर, हाथों से दोनों अंगूठों को पकड़कर घुटनों पर मस्तक लगाकर रखने से पश्चिमोत्तानासन आसन कहलाता है।

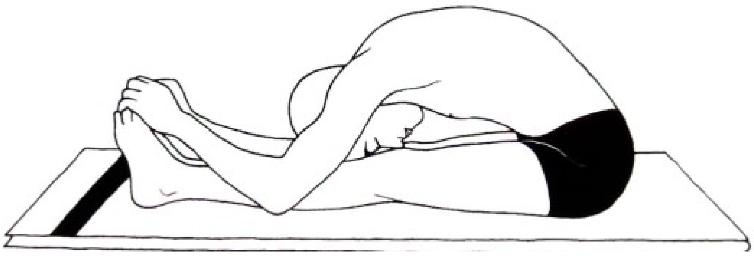

सावधानियाँ –

- कमर से संबंधित समस्या जैसे स्लिप डिस्क, सर्वाइकल आदि से ग्रसित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप से ग्रसित व्यक्तियों को भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- इस आसन में पैरों एवं कमर को अत्यधिक लचीला बनाना पड़ता है इसलिए किसी प्रकार के अत्यधिक बल का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अपनी क्षमतानुसार ही अभ्यास करना चाहिए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

- अभ्यास करते समय यदि कमर में अत्यधिक खिचाव का अनुभव हो तो अभ्यास को रोक देना चाहिए।

लाभ –

- पेट की माँसपेशियों को व्यवस्थित करता है।
- इस आसन का नियमित अभ्यास कमर संबंधित रोगों से बचाव करता है।
- इस आसन का अभ्यास कृमि रोग में भी बहुत लाभकारी है।
- यह आसन पाचन तंत्र के लिए भी लाभकारी है और जठराग्नि को बढ़ाता है।

10) मयूरासन -

धरामवष्टभ्य करद्वयेनतत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वः ।

उच्चासनोदण्डवदुत्थितः खेमायूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम्॥ हठप्रदीपिका11/30॥

अर्थात् दोनों हाथों को भूमि पर अच्छी तरह स्थापित कर और दोनों कोहनियों को नाभी के दोनों ओर लगाकर दण्ड के समान अधर (भूमि से ऊपर) में उठने को मयूर आसन कहते हैं।

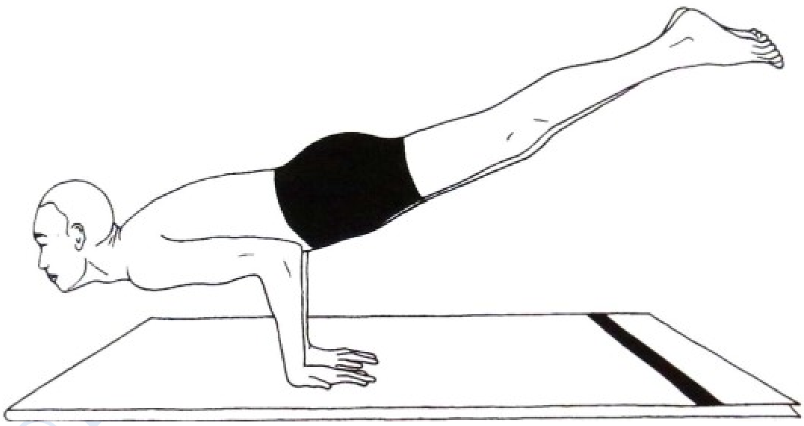

सावधानियाँ –

- शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों को आरंभ में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- महिलाओं को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- पेप्टिक अल्सर जैसे रोग में भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- हार्निया की समस्या में भी इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- उचित मार्गदर्शन में ही इस आसन का अभ्यास करना चाहिए।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

लाभ –

- योग ग्रंथों में ऐसा बताया गया है कि इस आसन के अभ्यास से व्यक्ति पर विष का प्रभाव भी नहीं पड़ता।
- इस आसन का अभ्यास हाथों के बल में वृद्धि करता है।
- इस आसन का अभ्यास पाचन तंत्र को स्वस्थ करता है एवं जठराग्निकोप्रदीप्त करता है।
- इस आसन का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक एकाग्रता को बढ़ाता है।

11) शवासन -

उत्तानं शववत् भूमौ शयनं तच्छवासनम्।

शवासनंश्रान्तिहरंचित्तविश्रान्तिकारकम्॥हठप्रदीपिका11/32॥

अर्थात् भूमि पर शव के समान पीठ के बल लेट जाना शवासन है। शवासन थकान को मिटाता है और मानसिक शांति प्रदान करता है।

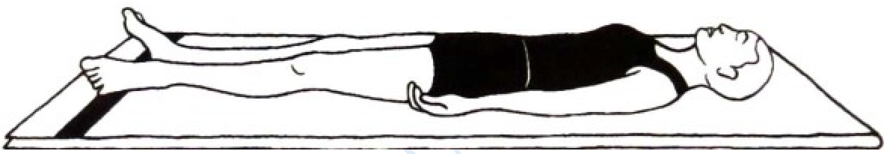

सावधानियाँ –

- शवासन का अभ्यास करते हुए सोना नहीं चाहिए।
- शरीर पर किसी भी प्रकार का तनाव नहीं पड़ने देना चाहिए।

लाभ –

- शवासन का अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक तनाव को दूर कर शांति प्रदान करता है।
- अनिद्रा के निदान में भी बहुत सहायक है।
- अत्यधिक चंचल प्रवृत्ति को शांत करने में भी यह आसन सहायक है।
- हृदय संबंधी रोगों में भी शवासन लाभ पहुँचाता है।

12) सिद्धासन -

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्
मेढ्रेपादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशापश्येद्भ्रुवोरन्तरं
ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ हठप्रदीपिका11/35॥

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अर्थात् एक पाँव की एड़ी को सीवनी (गुदा स्थान) में अच्छी तरह लगाकर और दूसरे पाँव को गुप्तांग के ऊपर दृढ़ता से रखें, चिबुक को हृदय प्रदेश पर अच्छी तरह स्थापित कर इंद्रियों को संयमित कर तथा भ्रूमध्य-दृष्टि होकर निश्चल रहना चाहिए।मोक्षद्वार का भेदन करने वाला अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाला यह सिद्धासन कहलाता है।

दूसरे मत के अनुसार -

मेण्ढ्रादुपरि विन्यस्य सव्यं गुल्फं तथोपरि ।

गुल्फान्तरं च निक्षिप्य सिद्धासनमिदं भवेत् ॥ हठप्रदीपिका11/36॥

अर्थात् गुप्तांग के ऊपर बाएँ पाँव की एड़ीतथा उसके ऊपर दूसरे पाँव की एड़ीरखकर भी सिद्धासन होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

सावधानियाँ –

- पैरों में यदि किसी प्रकार की कोई समस्या हो तो इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- कमर से जुड़ी समस्याओं से ग्रसित व्यक्ति को भी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- इस आसन का अभ्यास शारीरक संतुलन को बनाता है जो ध्यान आदि उच्च अभ्यासों के लिए अत्यधिक आवश्यक है।
- इस आसन का अभ्यास मानसिक स्थिरता को भी प्रदान करता है।
- इस आसन का अभ्यास रक्तचाप को भी संतुलित रखता है।

13) पद्मासन -

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा

दक्षोपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम ।

अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्

एतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥हठप्रदीपिका11/44॥

अर्थात् बायीं जंघा के ऊपर दाहिना पाँव तथा दाहिनी जंघा के ऊपर बायां पाँव स्थापित कर दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर दाहिने हाथ से दायें अंगूठे को तथा बाएँ हाथ से बाएँ अंगूठे को दृढ़ता से पकड़कर उसके पश्चात् हृदय प्रदेश पर ठुड्डी को लगाकर नासाग्रदृष्टि रखने से पद्मासन होता है। योगियों के द्वारा कथित यह पद्मासन सभी रोगों को नष्ट करने वाला होता है।

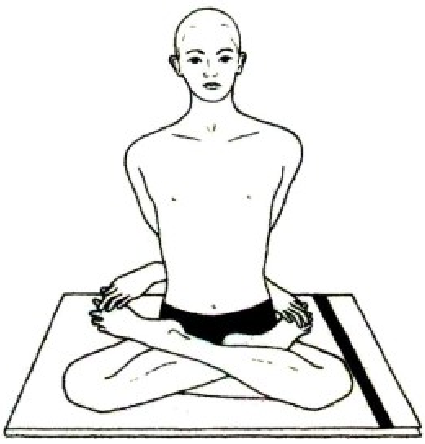

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

दूसरे मत में -

उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।

ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशौ ॥हठप्रदीपिका11/45॥

नासाग्रे विन्यसेद्राजदन्तमूले तु जिह्वया ।

उत्तभ्य चिबुकं वक्षस्युत्थाप्य पवनं शनैः ॥हठप्रदीपिका111/46॥

अर्थात् दोनों पैरों के तलवों को ऊपर की ओर करके यत्नपूर्वक (विपरीत) जंघाओ पर रखकर एवं ठुड्डी को हृदयप्रदेश में स्थापित कर, एक हथेली को दूसरी हथेली पर रखते हुए जंघाओं के मध्य में रख कर, प्राण को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर, नासाग्रदृष्टि रखते हुए, जीभ को तालु के अग्रभाग में लगाएँ। यह पद्मासन कहलाता है।

सावधानियाँ –

- पैरों में यदि लचीलापन कम हो अथवा कोई समस्या हो तो इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- कमर संबंधित रोग जैसे साइटिका इत्यादि में इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- यह आसन योग के उच्च अभ्यासों जैसे प्राणायाम, ध्यान इत्यादि के लिए अत्यधिक उपयुक्त है।
- इस आसन का अभ्यास शरीर को संतुलित रखने में सहायक है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से उच्च रक्तचाप भी घटने लगता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

14) सिंहासन -

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।

दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके ॥हठप्रदीपिका1/50॥

हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुलीः सम्प्रसार्य च ।

व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ॥हठप्रदीपिका1/51॥

सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिपुङ्गवैः ।

बन्धत्रितयसन्धानं कुरुते चासनोत्तमम् ॥हठप्रदीपिका 1/52॥

अर्थात् दोनों एड़ी अंडकोश के नीचे सीवनी (गुदा स्थान)के दोनों ओर बायीं एड़ी को दक्षिण पार्श्व में तथा दायीं एड़ी को वाम पार्श्व में लगाएँऔर तब दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर सभी अंगुलियों को फैलाएँ। मुख को चौड़ा खोलकर नासाग्रदृष्टि रखते हुए अच्छी प्रकार स्थिर करें। श्रेष्ठ योगियों द्वारा पूजित यह सिंहासन कहलाता है। आसनों में उत्तम यह आसन तीनों बंधों के अभ्यास को सरल बनाता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

सावधानियाँ –

- घुटने के दर्द से पीड़ित लोगों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- यदि हाल ही में कोई ऑपरेशन हुआ हो तो भी इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- सिंहासन का नियमित अभ्यास स्वर को मधुर बनाता है।
- इस आसन का अभ्यास मन को एकाग्र करता है।
- गले से संबंधित विकारों में भी यह अभ्यास लाभकारी होता है।

15) भद्रासन -

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।

सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे ॥हठप्रदीपिका1/53॥

पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम् ।

भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ।

गोरक्षासनमित्याहुरिदं वै सिद्धयोगिनः ॥हठप्रदीपिका1/54॥

अर्थात् दोनों एड़ियों को अंडकोश के नीचे सीवनी (गुदा स्थान)के पार्श्व में रखें।बायीं एड़ीको सीवनी के वाम भाग में तथा दायीं एड़ीको सीवनी के दाहिने भाग में रखकर दोनों पावों के अग्रभाग को अच्छी प्रकार से पकड़कर स्थिर रहें। यह सभी व्याधियों को नाश करने वाला भद्रासन है। सिद्ध योगी इसी को गोरक्षासन कहते हैं।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

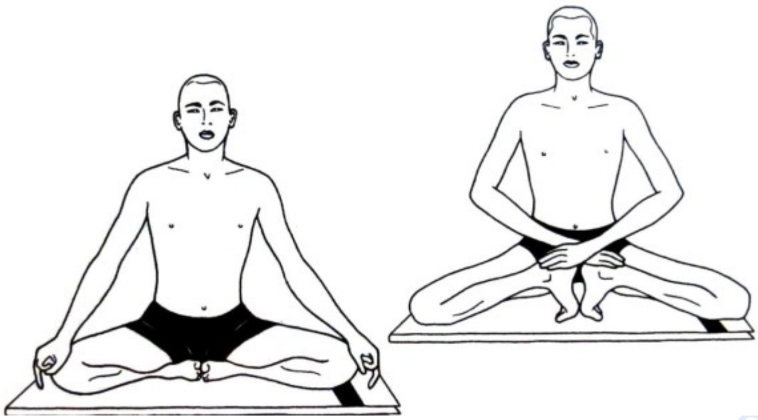

सावधानियाँ –

- घुटनों में दर्द की समस्या होंने पर इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए

लाभ –

- भद्रासन का अभ्यास शरीर और मन को शांत करने में अत्यधिक सहायक है।
- यह आसन एक उत्तम ध्यानात्मक आसन है जो योग साधकों को उनकी साधना में सहायता प्रदान करता है।

पाठ्य-प्रश्न

5. हठप्रदीपिका में______आसनों का वर्णन किया गया है।
6. कुक्कुटासन का अभ्यास______की माँसपेशियों के बल को बढ़ाता है।
7. गर्भवती महिलाओं के लिए धनुरासन का अभ्यास पूर्णतः वर्जित है। सही/गलत

मत्स्येंद्रासन का अभ्यास श्री ______ द्वारा कहा गया है।

5.7 आसन के लाभ

आसन का अभ्यास अभ्यासी को अनेक लाभ प्रदान करता है। शारीरिक और मानसिक क्षमताओं की वृद्धि के साथ-साथ आसनों का अभ्यास आध्यात्मिक लाभ भी प्रदान करता है जो साधक को उसकी साधना में प्रगति करने के लिए सहायक होते हैं। आइए आसनों के लाभों की विस्तार से चर्चा करते हैं–

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1) आसनों का लाभ बताते हुए स्वामी स्वात्माराम हठप्रदीपिका में कहते हैं - **कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम् (1/17)** अर्थात् आसनों का अभ्यास शरीर में स्थिरता,आरोग्यता एवं लाघवता (हल्कापन) लाता है।
2) घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड आसनों की विशेषता बताते हुए कहते हैं - **आसनेनभवेद्दृढम्** (1/10) अर्थात् आसन शरीर को दृढ़ता प्रदान करते हैं।
3) महर्षि पतंजलि भी आसन सिद्धि का लाभ वर्णित करते हुए योगसूत्र में कहते हैं -**ततो द्वन्द्वानभिघातः (2/48)**अर्थात् आसन सिद्ध हो जाने पर शरीर पर शीत-उष्णआदिद्वंद्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता।
4) प्रातःकाल गुनगुना पानी पीकर कुछ गत्यात्मक आसनों का अभ्यास शरीर से मल के निष्कासन में अत्यधिक सहायक होता है।उत्सर्जन तंत्र के ठीक तरह से कार्य करने से शरीर से विषैले पदार्थ बाहर निकल जाते है और शरीर में ताजगी आती है।
5) मानव शरीर में भोजन का पाचन करने के लिए विभिन्न तरह के पाचक रस एवं एन्ज़ाइम कार्य करते हैं। यदि इनका स्त्राव उपयुक्त तरह से न हो तो पाचन का कार्य ठीक से नहीं होगा।आसनों का अभ्यास इन पाचक रसों और एन्ज़ाइम के स्त्राव को उपयुक्त बनाए रखता है जिससे पाचन ठीक रहता है।
6) पाचन अच्छे से होने पर भोजन से सर्वाधिक मात्रा में आवश्यक पोषक तत्त्व शरीर को उपलब्ध हो पाते है जो शरीर के विकास में अत्यधिक सहायक है।
7) आसनों का अभ्यास शरीर में रक्त के प्रवाह को बढ़ाता है जिससे शरीर के प्रत्येक भाग तक रक्त का संचार सुचारु रूप से बना रहता है।
8) आसनों का नियमित अभ्यास माँसपेशियों को लचीला बनाता है।प्रतिदिन की गतिविधियों से माँसपेशियों में तनाव इककट्ठा हो जाता है।आसनों के माध्यम से सकारात्मक खिंचाव उत्पन्न करके उस तनाव को समाप्त करने में सहायता प्राप्त होती है।
9) आसनों का अभ्यास अस्थियों के लिए भी बहुत लाभदायक होता है।नियमित अभ्यास अस्थियों को मजबूती प्रदान करता है और संधियों को भी लचीला और मजबूत बनाता है।
10) लचीली मांसपेशियों और मजबूत अस्थियों के द्वारा आसन शरीर की उपयुक्त आकृति बनाए रखने में भी सहायता करते हैं।
11) आसनों का अभ्यास हृदय की गति को तीव्र करता है जिससे हृदय की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।
12) आसनों का नियमित अभ्यास शरीर में हॉर्मोन्स का स्तर संतुलित रखता है। सभी हॉर्मोन्स उचित मात्रा में निकलते है जो स्वस्थ रहने के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

13) आसनों का अभ्यास शरीर से अशुद्धियों को पसीने व मूत्र के माध्यम से बाहर निकालने में सहायता करता है।
14) आसनों का अभ्यास शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है।
15) आसनों का अभ्यास बाहरी रूप से तो शरीर पर प्रभाव डालता ही है पर इसके साथ ही ये अभ्यास शरीर के आंतरिक अंगों की भी मालिश करते हैंजो उन्हेंसुचारु रूप से कार्यरत रखने में सहायक होता है।
16) आसनों का अभ्यास श्वास-प्रश्वास के नियंत्रण के साथ किया जाता है जिसके द्वारा श्वसन पर भी नियंत्रण स्थापित होता है।
17) आसन केवल शरीर को ही प्रभावित नहीं करते अपितु आसनों की स्थिरता मन पर भी प्रभाव डालती है।संतुलित श्वासों के साथ जब साधक आसनों में स्थिर होने का प्रयास करता है तो मन की चंचलता भी कम होती है।
18) आसनों का अभ्यास शरीर में एकाग्रता का भी वर्धन करता है।
19) आसनों का अभ्यास शरीर को दृढ़ता और लाघवता प्रदान करता है जो साधक को लंबे समय तक एक स्थिति में बने रहने में सहायता प्रदान करता है। यह स्थिरता योग साधना के उच्च अभ्यासों के लिए अत्यधिक आवश्यक है।
20) आसनों का अभ्यास अधिकतम स्वास्थ्य की प्राप्ति के साथ-साथ दीर्घ आयु भी प्रदान करता है।

पाठ्य-प्रश्न

17. महर्षि घेरण्ड के अनुसार आसन शरीर को ______ प्रदान करते है।
18. महर्षि पतंजलि के अनुसार आसन सिद्धि हो जाने पर शरीर पर ______ का प्रभाव नहीं पड़ता।
19. आसनों का अभ्यास माँसपेशियों को लचीला बनाता है। सही/गलत
20. आसनों का अभ्यास मात्र शरीर पर पड़ता है मन पर नहीं। सही/गलत

5.8 आसन के सिद्धांत

आसनों का अभ्यास निश्चित रूप से अनेकों लाभ प्रदान करता है परंतु इन सभी लाभों को प्राप्त करने और दुष्प्रभावों से बचने के लिए साधक को आसनों से संबंधित कुछ सिद्धांतों का पालन करना चाहिए -

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

1) आसनों को करने के लिए स्थान का चयन सोच समझ कर करना चाहिए।जिस स्थान को आप चुने वह साफ स्वच्छ हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिए।

2) योगाभ्यास करने के लिए उपयुक्त चटाई अथवा दरी का प्रयोग करना चाहिए ताकि आसन करते समय सहजता बनी रहे।

3) आसनों के अभ्यास में बहुत अधिक शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।धीरे -धीरे सहजता के साथ अभ्यास को करना चाहिए।

4) आसनों को करते हुए किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्धा से बचना चाहिए।

5) आसनों का अभ्यास अपनी शारीरिक क्षमताओं का आंकलन करते हुए अपनी क्षमतानुसार ही करना चाहिए।

6) आसनों का अभ्यास करने के पूर्व यदि षट्कर्मों (धौति, वस्ति, नेति, नौलि,त्राटक और कपालभाति) का अभ्यास किया जाए तो अभ्यास और सुलभ हो जाता है।

7) आसनों का अभ्यास सदैव खाली पेट करना चाहिए। अभ्यास और भोजन के बीच कम से कम 2 घंटों का अंतर रखना चाहिए।

8) योग शास्त्रों में योगाभ्यास के लिए प्रातःकाल का समय सबसे उपयुक्त बताया गया है। यदि प्रातःकाल में अभ्यास संभव न हो तो सांय काल में भी अभ्यास कर सकते हैं।

9) आसनों के अभ्यास के बाद प्राणायाम का अभ्यास अत्यधिक आवश्यक है। आसनों को करते हुए जिस ऊर्जा का क्षय होता है उस ऊर्जा की पुनः प्राप्ति प्राणायाम द्वारा की जानी चाहिए।

10) योग ग्रंथों के अनुसार योगाभ्यास करते समय शरीर से उत्पन्न पसीने का शरीर पर ही मर्दन कर लेना चाहिए। ऐसा करने से शरीर में कान्ति एवं मजबूती आती है।यदि बहुत अधिक पसीना आए तो किसी स्वच्छ कपड़े का प्रयोग कर सकते हैं।

11) अभ्यास करते समय इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिए कि प्रत्येक आसन के बाद कुछ क्षणों तक विश्राम अवश्य करना चाहिये। जिस श्रेणी का अभ्यास किया जा रहा है उसी अनुसार विश्राम का निर्धारण भी करना चाहिए।

12) आसनों का अभ्यास करते हुए संतुलन का ध्यान रखना चाहिए अर्थात् आगे की ओर झुक कर आसन करने के पश्चात् पीछे की ओर झुक कर आसन अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार यदि एक ओर झुक कर कोई आसन किया गया है तो दूसरी ओर झुक कर भी उस अभ्यास को दोहराना चाहिए।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

13) आसन करते समय श्वासों का ध्यान रखना चाहिए। निरंतर श्वास-प्रश्वास का क्रम बनाए रखना चाहिए अन्यथा चक्कर आने की समस्या हो सकती है।

14) अभ्यास करते समय ढीले-ढाले वस्त्रों को धारण करना चाहिए। सूती वस्त्रों का प्रयोग उत्तम रहता है। वस्त्रों का निर्धारण करते हुए मौसम का भी ध्यान रखना चाहिए।

15) आसनों का अभ्यास करते हुए किसी भी अनावश्यक वस्तु जैसी अंगूठी,बेल्ट, घड़ी अथवा और किसी आभूषण को धारण नहीं करना चाहिए।

16) आसनों का अभ्यास मात्र पुस्तकों अथवा चलचित्रों को देख कर नहीं करना चाहिए।

17) आसन करने के तुरंत बाद स्नान नहीं करना चाहिए। पसीने को अच्छे से सुखाने के बाद ही स्नान करना चाहिए।

18) नए अभ्यासियों को सदैव एक योग्य प्रशिक्षक के संरक्षण में ही योगाभ्यास करना चाहिए।

पाठ्य-प्रश्न

9. आसनों का अभ्यास किसी भी स्थान पर कर लेना चाहिए। सही/गलत
10. आसनों का अभ्यास सहजता के साथ करना चाहिए। सही/गलत
11. आसनों का अभ्यास सदैव खाली पेट करना चाहिए। सही/गलत
12. आसनों का अभ्यास ______वस्त्रों में करना चाहिए।
13. आसन करने के तुरंत बाद______नहीं करना चाहिए।

5.9 सारांश

इस प्रकार से इस अध्याय में हमने जाना कि शरीर की एक स्थिति (मुद्रा) विशेष को आसन कहा जाता है। तथा यह योग के अभ्यासों का अनिवार्य अंग है। आसन अनेक प्रकार के हैं तथा यदि पूर्ण सावधानी व नियमों का पालन करते हुए इनका नियमित अभ्यास किया जाए तो इनसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी सुनिश्चित होती है।

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **सौष्ठव** -सुंदरता
- **कटि** -कमर
- **गुल्फ** -टखना
- **जानु** -घुटना
- **सव्य** -बाँया
- **तिर्यक** -तिरछा
- **पार्श्व** -बगल
- **चिबुक** -ठोड़ी
- **मेरुदंड** -रीढ़ की हड्डी
- **दक्षता** -कुशलता
- **दण्ड** -लाठी

5.11 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1.	**अस्**	14.	हाथों
2.	सही	15.	सही
3.	सुखपूर्वक	16.	मत्स्येंद्रनाथ
4.	क) समस्तवस्तुओंमेंउदासीनभाव	17.	दृढ़ता
5.	स्थिरता	18.	द्वन्द्वों
6.	मन	19.	सही
7.	सही	20.	गलत
8.	गलत	21.	गलत
9.	3	22.	सही
10.	विश्रामात्मक	23.	सही
11.	ग) पद्मासन	24.	सूती
12.	मयूर	25.	स्नान
13.	15		

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

5.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. आसन के अर्थ एवं परिभाषाओं पर प्रकाश डालें।
2. आसन के प्रकारों को स्पष्ट करें।
3. हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आसनों का विवरण प्रस्तुत करें।
4. आसनों के लाभों का सविस्तार वर्णन करें।
5. आसन के प्रमुख सिद्धांतों की व्याख्या करें।
6. आसन योग साधना व स्वास्थ्य संवर्धन का प्रमुख घटक हैं- सविस्तार व्याख्या करें।

5.13 संदर्भ-ग्रन्थ

- *श्रीमद्भगवद्गीता* (2021), गीताप्रेस, गोरखपुर
- दिगम्बर स्वामी, *हठप्रदीपिका* - स्वात्माराम कृत्(2017), कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावाला
- निरंजनानन्द स्वामी, *घेरण्ड संहिता* (2012), योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,, मुंगेर, बिहार
- महर्षिपतञ्जलि, *पातंजल योगसूत्र* (2017), गीताप्रेस गोरखपुर
- शर्मा श्रीराम, *108 उपनिषद् साधनाखंड* (2018),युग निर्माण योजना ट्रस्ट

5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- सरस्वती स्वामी सत्यानंद, *आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध* (2017), योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
- आयंगर बी.के.एस, *योग दीपिका* (2009), ब्लैक स्वान प्रकाशन
- बसवारेड्डी ईश्वर, *योगासन- मोनोग्राफ* (2008),मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ-6

सूर्यनमस्कार एवं नाड़ी शोधन प्राणायाम

डॉ.अर्पित कुमार दुबे
सहायक आचार्य (संस्कृत)
मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान ,नई दिल्ली
गुरु गोबिन्द सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय,द्वारका,नई दिल्ली

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

संरचना

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 सूर्यनमस्कार
 6.3.1 सूर्यनमस्कार के अभ्यास चरण
 6.3.2 सूर्यनमस्कार की सावधानियाँ
 6.3.3 सूर्यनमस्कार के लाभ
6.4 नाड़ीशोधन प्राणायाम
 6.4.1 प्राण एवं नाड़ी की अवधारणा
 6.4.2 नाड़ी शोधन की विधि
 6.4.3 नाड़ीशोधन प्राणायाम की सावधानियाँ
 6.4.4 नाड़ीशोधन प्राणायाम के लाभ
6.5 सारांश
6.6 पारिभाषिक शब्दावली
6.7 पाठ्य-प्रश्नों के उत्तर
6.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

6.9 संदर्भ ग्रंथ

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से विद्यार्थी -

- सूर्यनमस्कार के अभ्यास से परिचित हो पाएँगे ।
- सूर्यनमस्कार करने की सावधानियाँ एवं इससे मिलने वाले लाभों को जान पाएँगे।
- नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास से परिचित हो पाएँगे।
- नाड़ीशोधन प्राणायाम करने की विभिन्न विधियों को जान पाएँगे।
- नाड़ीशोधन का अभ्यास करने की विभिन्न सावधानियों एवं लाभों को समझ पाएँगे।

6.2 प्रस्तावना

सूर्यनमस्कार एवं नाड़ीशोधन प्राणायाम योग अभ्यास एवं साधना के अत्यंत महत्वपूर्ण अंगों में से हैं। सूर्यनमस्कार का अभ्यास योग के क्षेत्र में प्राणवर्धक अभ्यास के रूप में विख्यात है । सूर्यनमस्कार का अभ्यास शारीरिक रूप से बल एवं ऊर्जा के वर्धन के साथ साथ आध्यात्मिक प्रगति में भी सहायक है । नाड़ीशोधन प्राणायाम का वर्णन भी हठ योग के ग्रंथों एवं योग उपनिषदों में पाया जाता है । इसका अभ्यास शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य वर्धन के साथ-साथ साधक की आध्यात्मिक यात्रा में भी बहुत सहायक सिद्ध होता है । नाड़ीशोधन का अभ्यास शरीर में फैली 72000 नाड़ियों के शोधन हेतु किया जाता है । नाड़ी शुद्धि सिद्ध होने पर नाड़ियों में प्राण का प्रवाह सुचारु रूप से होने लगता है जिससे मन शांत एवं एकाग्र होता है तथा ध्यान स्वाभाविक रूप से घटित होने लगता है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम इन दोनों महत्वपूर्ण अभ्यासों के बारे में विस्तार से जानने का प्रयत्न करेंगे ।

6.3 सूर्यनमस्कार

सूर्यनमस्कार का अभ्यास सैंकड़ों वर्षों से शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता रहा है । जैसा की नाम से ही स्पष्ट है, सूर्य + नमस्कार अर्थात् सूर्य को नमस्कार । सूर्य की उपासना भारतीय संस्कृति में सदैव से ही विद्यमान है । भारत के साथ-साथ सूर्यउपासना के प्रमाण अन्य देशों जैसे मिस्र, चीन, ब्रिटेन आदि में भी पाए गए है । वास्तविक अर्थों में सूर्योपासना मात्र सूर्य की उपासना तक ही सीमित नहीं है बल्कि सूर्य के रूप में उस परम अविनाशी सत्ता जिसे ब्रह्म, आत्मा,

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

ईश्वर इत्यादि नामों से जाना जाता है उसकी उपासना से है, सूर्य तो प्रतीक मात्र है । आधुनिक युग में जहाँ मनुष्य विभिन्न तरह के शारीरिक एवं मानसिक तनावों से घिर चुका है एवं स्वयं के लिए भी समय निकालने में असक्षम है, ऐसी परिस्थिति में सूर्यनमस्कार का अभ्यास एक वरदान के समान है जिसका 10 से 15 मिनट का नियमित अभ्यास व्यक्ति को व्याधियों से दूर कर स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है ।

सूर्यनमस्कार को सभी प्रकार के आसनों का सारांश माना जाता है। सूर्यनमस्कार मे कुल 7 आसन 12 चरणों में किए जाते है। इन 12 चरणों में शरीर को आगे व पीछे की ओर मोड़ते हुए निरंतर बिना रुके करने पर सूर्यनमस्कार होता है । आरंभिक रूप में हो सकता है शरीर की माँसपेशियाँ लचीली न हो एवं शरीर में जकड़न हो इसलिए पहले इन 12 चरणों में अलग-अलग दक्षता प्राप्त करनी चाहिए । जब शरीर इन अवस्थाओं में सहज होने लगे तब धीरे-धीरे श्वासों को भी अपने अभ्यास के साथ जोड़ते हुए अभ्यास को बढ़ाना चाहिए । प्रत्येक स्थिति का एक मंत्र है। बिना मंत्रों के भी इसका अभ्यास किया जा सकता है। इसके साथ प्रत्येक स्थति में एक निश्चित चक्र पर भी सजगता बनाई जाती है जिनका वर्णन भी आसन के साथ ही किया जा रहा है। अभ्यास में प्रगति करते हुए सूर्यनमस्कार के अभ्यास में मंत्र, एवं चक्रों की सजगता को जोड़ने पर आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

अभ्यास के पूर्व -

सूर्यनमस्कार का अभ्यास आरंभ करने के पूर्व दोनो पैरों को मिलाकर अथवा कुछ दूरी पर करके खड़े हों । दोनों हाथों को शरीर के निकट जंघाओं से मिलकर रखें । दृष्टि सामने किसी एक बिन्दु पर स्थित करें । यह प्रारम्भिक स्थिति है । सहजता से नेत्रों को बंद करके स्वयं को तनावरहित करने का प्रयत्न करें । बंद आँखों के साथ पूरे शरीर का अवलोकन करें । सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाएँ । स्वयं को शारीरिक एवं मानसिक रूप से सूर्यनमस्कार के अभ्यास के लिए तैयार करें ।

6.3.1 सूर्यनमस्कार के 12 चरण -

चरण 1 -प्रणामासन

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

प्रारम्भिक स्थिति से दोनों पैरों को एक साथ अथवा कुछ दूरी पर रखते हुए दोनों हाथों को धीरे से उठाते हुए वक्षस्थल के सामने प्रणाम मुद्रा में जोड़ लें ।

आँखों को सहजता से बंद कर लें। हाथों द्वारा वक्षस्थल पर पड़ रहे दबाव के प्रति सजग हो जाएँ । मानसिक रूप से सूर्य के प्रति सम्मान ज्ञापित करें ।

पूरे शरीर को शिथिल कर दें ।

श्वास -सामान्य श्वास-प्रश्वास

मंत्र - ॐ मित्राय नमः

चक्र - अनाहत चक्र

चरण 2 - हस्त उत्तानासन

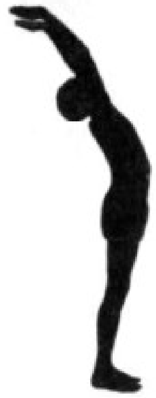

आँखों को खोलते हुए दोनों भुजाओं को सिर के ऊपर की ओर लेकर जाएँ। हथेलियों का मुख आकाश की ओर रखें । दोनों भुजाओं को कंधों की सीध में रखते हुए कान से सटा कर रखें ।

पीछे की ओर झुकते हुए शरीर को धनुषाकार आकृति देते हुए पूरे शरीर में खिंचाव दें ।

सहजता से, जितना संभव को सिर को पीछे झुकाते हुए, पीठ के ऊपरी भाग के झुकाव के प्रति सजग हो जाएँ ।

श्वास - भुजाओं को ऊपर उठाते हुए श्वास अंदर लें ।

मंत्र -ॐ रवये नमः

चक्र -विशुद्धि चक्र

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL, University of Delhi

चरण 3 -पादहस्तासन

गतिशीलता बनाए रखते हुए कमर से आगे की ओर झुकिए।

अपने हाथों को धरती पर दोनों पैरों के बगल में रखिए और वक्ष स्थल तथा ललाट को जाँघ तथा घुटनों से स्पर्श कराने का प्रयास करें ।

पैरों को सीधा रखें तथा अपनी सजगता को श्रोणि प्रदेश पर रक्खें जो कि पीठ एवं पैरों की माँसपेशियों के खिंचाव का केन्द्रबिन्दु है ।

श्वास -सामने की ओर झुकते हुए श्वास बाहर छोड़ें । अंतिम स्थिति में फेफड़ों से अधिकाधिक वायु को बाहर निकालने का प्रयत्न करें ।

मंत्र - ॐ सूर्याय नमः

चक्र -स्वाधिष्ठान चक्र

चरण 4 -अश्वसंचालन

दोनों हाथों को पैरों के बगल में ही रखें, अब बाएँ घुटने को मोड़ें एवं दायें पैर को यथासंभव पीछे की ओर ले जाइए ।

दायें पैर का घुटना एवं पंजा धरती पर ही रहे ।

श्रोणि प्रदेश को आगे की ओर लाते हुए, कमर को धनुषाकार बनाते हुए ऊपर देखिए । हाथ की उंगलियों के अग्र भाग को धरती पर टिका कर रखें । शरीर को इसी स्थिति में संतुलित रखें ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

अपनी सजगता को भ्रूमध्य पर केंद्रित करें ।

शरीर में हो रहे खिंचाव को पैरों से भ्रूमध्य तक अनुभव करें।

श्वास -पैर को पीछे ले जाते हुए एवं वक्ष स्थल को सामने उठाते हुए श्वास अंदर लें ।

मंत्र - ॐ भानवे नमः

चक्र -आज्ञा चक्र

चरण 5 -पर्वतासन

हथेलियों को पूर्णतः धरती पर रख दें ।

बाएँ पैर को भी उठा कर दायें पैर के पास पीछे ले जाएँ । धीरे-धीरे नितंबो को ऊपर की ओर उठाते हुए सिर को दोनों भुजाओं के मध्य में ले आयें ।

इस चरण में शरीर धरती के साथ त्रिभुजाकार स्थिति में आ जाएगा ।

अंतिम स्थिति में पैरों तथा हाथों की स्थिति सीधी रहनी चाहिए ।

इस चरण में एड़ियों को भी धरती से स्पर्श करने का प्रयास करें परंतु अत्यधिक बल का प्रयोग न करें।

सजगता को गर्दन पर बनाए रखें ।

श्वास -बाएँ पैर को पीछे ले जाते हुए श्वास बाहर छोड़ें ।

मंत्र -ॐ खगाय नमः

चक्र -विशुद्धि चक्र

चरण 6 -अष्टांग नमस्कार

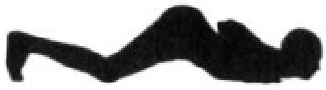

©DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

घुटनों को धीरे से नीचे लाते हुए धरती से स्पर्श करें, फिर नितंबो को ऊपर रखते हुए वक्ष तथा ठुड्डी को धरती से स्पर्श करें ।

हाथ, ठुड्डी, वक्ष, घुटने तथा पंजे धरती से लगे हुए रहें । मेरुदंड को धनुषाकार स्थिति में लाइये ।

अपनी सजगता को शरीर के मध्य भाग अथवा पीठ की माँसपेशियों पर केंद्रित करें ।

श्वास -इस चरण में श्वास को बाहर रोक कर रखें ।

मंत्र - ॐ पूष्णे नमः

चक्र -मणिपुर चक्र

चरण 7 - भुजंगासन

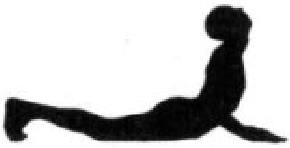

जांघों को भूमि पर टिकाते हुए भुजाओं की सहायता से वक्ष स्थल को ऊपर की ओर उठाएँ।

कुहुनियों को सीधा करते हुए पीठ को धनुषाकार बनाएँ, परंतु हाथों को पूरी तरह से सीधा न करें । वक्ष स्थल को सामने की ओर लाते हुए सिर को थोड़ा पीछे की ओर मोड़ें, जो सर्प की आकृति प्रदान करे।

पैर तथा पेट का निचला भाग धरती पर ही रहेगा।

इस चरण में रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से पर पड़ने वाले तनाव पर अपनी सजगता को बनाएँ रखें।

श्वास -धड़ को ऊपर उठाते समय श्वास अंदर लें ।

मंत्र - ॐ हिरण्यगर्भाय नमः

चक्र - स्वाधिष्ठान चक्र

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

चरण 8 - पर्वतासन

यह चरण 5 की पुनरावृत्ति है ।

भुजाओं और पैरों को सीधा रखें । नितंबो को उठाते हुए पर्वतासन में आयें ।

हाथ और पैर चरण 7 की जगह से हिले नहीं । नितंबो को ऊपर उठाइए और एड़ियों को धरती पर टिकाइए ।

श्वास -नितंबो को उठाते समय श्वास बाहर छोड़िए ।

मंत्र -ॐ मरीचये नमः

चक्र -विशुद्धि चक्र

चरण 9 - अश्वसंचालन

यह चरण 4 की पुनरावृत्ति है ।

बाएँ पैर को सामने उठाते हुए दोनों हाथों के बीच रखिए, साथ ही दायें घुटने को धरती से लगाइए और श्रोणि प्रदेश को आगे की ओर खींचिए।

श्वास -इस स्थिति में आते हुए श्वास अंदर लीजिए।

मंत्र -ॐ आदित्याय नमः

चक्र -आज्ञा चक्र

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

चरण 10 -पादहस्तासन

यह चरण 3 की पुनरावृत्ति है ।

दायें पैर को उठाते हुए बाएँ पैर के बगल में रखिए । पैरों को सीधा करते हुए आगे की ओर झुकिए तथा नितंबो को उठाते हुए वक्षस्थल एवं सिर को जांघ तथा घुटनों के पास लाने का प्रयास करिए । हाथों को पैरों के पास धरती पर रखिए।

श्वास -इस स्थिति में आते हुए श्वास बाहर छोड़ें ।

मंत्र -ॐ सवित्रे नमः

चक्र -स्वाधिष्ठान चक्र

चरण 11 -हस्त उत्तानासन

यह चरण 2 की पुनरावृत्ति है ।

हाथों को कानों से मिलाए रखते हुए धड़ को कमर से ऊपर उठाते हुए हाथों को सिर से पीछे ले जाते हुए पीछे की ओर झुकें।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

श्वास -धड़ और हाथों को ऊपर की ओर उठाते समय श्वास अंदर लीजिए ।

मंत्र -ॐ अर्काय नमः

चक्र -विशुद्धि चक्र

चरण 12 : प्रणामासन

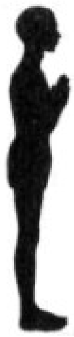

यह चरण 1 की पुनरावृत्ति है ।

शरीर को सीधा करते हुए हाथों को नमस्कार मुद्रा में वक्षस्थल के सामने जोड़ें।

श्वास -अंतिम चरण में आते हुए श्वास को बाहर छोड़ें ।

मंत्र -ॐ भास्कराय नमः

चक्र - अनाहत चक्र

नोट -यह सूर्यनमस्कार की आधी आवृत्ति है । आवृत्ति को पूर्ण करने के लिए इन्हीं 12 चरणों की पुनरावृत्ति की जाती है, परंतु चरण 4 तथा 9 में बायाँ पैर पीछे रहता है । इस प्रकार एक आवृत्ति के लिए कुल 24 स्थितियाँ (12-12 चरणों के 2 समूह) हैं। इस प्रकार एक आवृत्ति के बाद शरीर के दायीं और बायीं ओर संतुलन की स्थति आती है । आधी आवृत्ति होने के पश्चात् कुछ क्षणों का विश्राम लेते हुए शेष आवृत्ति को पूरा करें ।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य प्रश्न

1. सूर्यनमस्कार में कुल______आसन और______चरण हैं।
2. सूर्यनमस्कार का अभ्यास मात्र सूर्य की उपासना तक ही सीमित है। सही/गलत
3. सूर्यनमस्कार के अभ्यास में______एवं ______पर भी सजगता बनाई जाती है।
4. आरंभिक अभ्यास मे प्रत्येक चरण पर अलग–अलग दक्षता प्राप्त करनी चाहिए। सही/गलत

6.3.2 सूर्यनमस्कार की सावधानियाँ

सूर्यनमस्कार एक अत्यंत लाभकारी अभ्यास है परंतु इस अभ्यास का उपयुक्त लाभ लेने के लिए और दुर्घटनाओं एवं क्षतियों से बचने के लिए कुछ सावधानियों का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है -

1. सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है - तनाव की स्थिति से बचना । तनाव में रहते हुए सूर्यनमस्कार का अभ्यास कदापि नहीं करना चाहिए ।
2. अभ्यास करते हुए केवल आवश्यक माँसपेशियों का ही उपयोग करना चाहिए । शेष अंगों को पूरी तरह से शिथिल रखने का प्रयत्न करना चाहिए ।
3. आरंभिक रूप से यदि सम्पूर्ण आवृत्ति करने में कठिनाई हो तो धीरे-धीरे एक-एक आसन पर दक्षता प्राप्त करते हुए अभ्यास की गति को विवेकपूर्ण होकर ही बढ़ाना चाहिए ।
4. पादहस्तासन की स्थिति में पैर पूर्ण रूप से सीधे रहने चाहिए परंतु यदि माँसपेशियाँ लचीली न हो तो धीरे-धीरे प्रतिदिन अभ्यास के साथ उस अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
5. चरण 3 (पादहस्तासन) में पैरों के दोनों ओर भूमि पर रखे गए हाथों को, स्थिति 10 (पादहस्तासन) में लौटने तक तथा स्थिति 5 (पर्वतासन) में रखे गए पैरों को, स्थिति 8 (पर्वतासन) में लौटने तक अपनी जगह से हिलाएँ नहीं । यदि हाथों तथा पैरों को सही स्थिति में रखा गया है तो बीच में उन्हे हिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।
6. आरंभिक अभ्यासियों को स्थिति 5 (पर्वतासन) से स्थिति 8 (अष्टांग नमस्कार) में जाते समय कठिनाई होती है । ऐसी स्थिति में अभ्यास को टुकड़ों में विभाजित कर सकते हैं अर्थात् पहले घुटनों को इतना मोड़ें की वे भूमि से स्पर्श हो जाएँ। उसके बाद धड़ को नीचे ले जाते हुए कुहुनियों को इतना मोड़ें की वक्ष तथा ठुड्डी भी भूमि को स्पर्श करने लगे। इसी प्रकार अन्य आसनों को भी छोटी-छोटी स्थितियों में विभाजित करके अभ्यास करें ।

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

7. आरंभिक अभ्यासियों के लिए स्थिति 6 (अष्टांग नमस्कार) में श्वास रोकना कठिन हो सकता है। ऐसी स्थिति में वे इस अवस्था में अधिक समय न रुकते हुए सीधे स्थिति 7 में जाएँ । यदि स्थिति 6 में रुकने की इच्छा हो तो सुविधानुसार श्वास की स्थिति बना लें।

8. वृद्ध तथा दुर्बल लोगों को चरण 7 (भुजंगासन) से स्थिति 8 (पर्वतासन) में आने में कठिनाई हो सकती है। ऐसी स्थिति में उन्हें घुटनों को भूमि पर रखते हुए पर्वतासन में आना चाहिए। इससे उन्हें काफी सुविधा रहेगी।

9. यदि 12 चरणों का आधा चक्र कठिन लगे तो मात्र 9 चरणों का ही आधा चक्र किया जा सकता है, जिसमे चरण 1, 2, 3, 4, 5 तथा 9, 10, 11, 12 ही सम्मिलित हों। चरण 6, 7 और 8 को छोड़ा जा सकता है।

10. आवृतियों की संख्या आरंभ में 2-3 रखते हुए धीरे-धीरे 12 आवृत्तियों तक लेकर जा सकते हैं। परंतु आवृत्तियों की संख्या क्षमतानुसार ही बढ़ानी चाहिए।

11. सूर्यनमस्कार का सर्वश्रेष्ठ समय सूर्योदय है । ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, शौचादि से निवृत्त होकर, स्नान करने के पश्चात, ढीले एवं कम कपड़ों में सूर्य की ओर मुख करके अभ्यास करना चाहिए । यदि प्रातः काल में संभव न हो तो दिन में कभी भी खाली पेट किया जा सकता है परंतु ध्यान रहे किसी प्रकार के भोजन को ग्रहण करने के पश्चात् कम से कम 4 घंटे बाद ही अभ्यास करें ।

12. उच्च रक्तचाप अथवा हृदय से संबंधित किसी समस्या से पीड़ित व्यक्ति को सूर्य नमस्कार का अभ्यास नहीं करना चाहिए । हार्निया की दशा में भी यह अभ्यास वर्जित है ।

13. मेरुदंड की किसी समस्या से ग्रसित व्यक्ति को सूर्यनमस्कार का अभ्यास चिकित्सक के परामर्श के पश्चात किसी योग प्रशिक्षक की देख रेख में ही करना चाहिए ।

14. अधिकतर महिलाओं के लिए मासिक धर्म की अवधि में सूर्यनमस्कार का अभ्यास लाभदायक सिद्ध हुआ है, परंतु अत्यधिक कष्टप्रद स्थिति होने के दशा में इसका अभ्यास उचित नहीं है ।

15. गर्भावस्था में 12 वे सप्ताह के बाद सूर्य नमस्कार का अभ्यास नहीं करना चाहिए । प्रसव के 40 दिन पश्चात् इसका अभ्यास किया जा सकता है जो उदर एवं गर्भाशय की माँसपेशियों को पुनः उत्तम अवस्था में लाने में सहायक है ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

पाठ्य-प्रश्न

5. सूर्यनमस्कार के अभ्यास करते हुए______की स्थिति से बचना चाहिए।
6. सूर्यनमस्कार करने का सर्वश्रेष्ठ समय______है।
7. भोजन ग्रहण करने के कम से कम______घंटे बाद ही सूर्यनमस्कार का अभ्यास करना चाहिए।
8. सूर्यनमस्कार का अभ्यास उच्च रक्तचाप से ग्रसित व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए। सही/गलत

6.3.3 सूर्यनमस्कार के लाभ

सूर्यनमस्कार का अभ्यास करने की सावधानियों को ध्यान में रखते हुए यदि इसका प्रतिदिन अभ्यास किया जाए तो यह निश्चित रूप से अनेको शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्रदान करता है -

1. सूर्यनमस्कार का नियमित अभ्यास प्राण शक्ति को बढ़ाता है ।
2. सूर्यनमस्कार के नियमित अभ्यास संकल्प शक्ति तथा निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाता है।
3. इसका नियमित अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा को संतुलित करता है ।
4. सूर्यनमस्कार का अभ्यास अनेकों व्याधियों में भी लाभ पहुँचाता है, जैसे - मुहाँसा, भूख कम लगना, गठिया, दमा तथा फेफड़ों को अन्य विकृतियाँ, अपच, कब्ज, गुर्दों से संबंधित व्याधियाँ, निम्न रक्तचाप, मधुमेह, मासिक धर्म से संबंधित समस्याएँ, मानसिक समस्याएँ जैसे चिंता, अवसाद इत्यादि।
5. सूर्यनमस्कार का नियमित अभ्यास माँसपेशियों को लचीला तो बनाता ही है, साथ ही बलवर्धन भी करता है।
6. इसका अभ्यास शरीर की अस्थियों को भी मजबूती प्रदान करता है जो शरीर का सामान्य आकार बनाए रखने में सहायता प्रदान करता है ।
7. सूर्यनमस्कार करते हुए लयबद्ध श्वास-प्रश्वास का क्रम श्वसन संस्थान के लिए बहुत लाभदायक है । इसके अभ्यास से फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ती है एवं श्वास संबंधी विकारों से बचाव भी होता है ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

8. सूर्यनमस्कार का अभ्यास अनावश्यक रूप से हृदय पर दबाव नहीं डालता बल्कि सकारात्मक रूप से हृदय की गति को बढ़ाते हुए रक्त के द्वारा अशुद्धियों को दूर करने में सहायता प्रदान करता है । इसके साथ ही रक्त धमनियों का भी विकास करता है जो परिसंचरण तंत्र को स्वस्थ रखने में अत्यधिक सहायक है ।

9. सूर्यनमस्कार की विभिन्न स्थितियों में सकारात्मक खिंचाव एवं संकुचन होता है जिसके द्वारा शरीर के आंतरिक अंगों की मालिश होती है जिससे पाचन तंत्र स्वस्थ बनारहता है।

10. सूर्यनमस्कार का अभ्यास गुर्दों पर भी प्रभाव डालता है और उनकी कार्यक्षमता बढ़ाता है जिसके माध्यम से शरीर की अशुद्धियों को बाहर निकालने में सहायता मिलती है । इसके साथ यह छोटी एवं बड़ी आँत के क्रमाकुंचन में भी सहायता प्रदान करता है जो उत्सर्जन तंत्र की कार्य प्रणाली को सुचारु रूप से बनाए रखने में सहायक है ।

11. शरीर से अशुद्धियों के निष्कासन के परिणामस्वरूप त्वचा भी सुंदर हो जाती है । प्रातःकाल सूर्योदय के समय अभ्यास करने पर त्वचा सूर्य के प्रकाश से अल्ट्रा-वॉयलेट किरणों को भी अवशोषित कर लेती है जो विटामिन D के निर्माण में भी अत्यधिक सहायक है ।

12. सूर्यनमस्कार का अभ्यास अन्तः स्रावी ग्रंथियों को भी प्रभावित करता है जैसे पीयूषिका ग्रन्थि, चुल्लिका एवं उपचुल्लिका ग्रन्थि, अधिवृक्क ग्रंथियाँ, अग्नाशय एवं प्रजनन अंग, जिसके माध्यम से शरीर में विभिन्न हॉर्मोन्स एवं अन्य रासायनिक पदार्थों का स्तर सामान्य बना रहता है जो उपयुक्त स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है।

13. सूर्यनमस्कार का अभ्यास 8 वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चे कर सकते हैं। इसका नियमित अभ्यास बच्चों के शारीरक एवं मानसिक विकास में सहायता प्रदान करता है ।

14. सूर्यनमस्कार का अभ्यास नाड़ियों को शुद्ध कर प्राण के प्रवाह को सुगम बनाता है जो योग साधना में सहायक है ।

पाठ्य-प्रश्न

9. सूर्यनमस्कार का नियमित अभ्यास माँसपेशियों को_____बनाता है।
10. सूर्यनमस्कार का अभ्यास_____वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चे कर सकते हैं।
11. सूर्यनमस्कार का अभ्यास संकल्प शक्ति को बढ़ाता है। सही/गलत
12. सूर्यनमस्कार का अभ्यास शरीर के अंगों की कार्यक्षमता को बढाता है। सही/गलत

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

6.4 नाड़ीशोधन प्राणायाम

प्राणायाम का अभ्यास योग परंपरा के सबसे महत्वपूर्ण अभ्यासों में से एक है । इसकी महत्ता का अनुमान हम इसी बात से लगा सकते हैं कि योग के सभी प्रमुख ग्रंथों जैसे पातंजल योगसूत्र, हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, श्रीमद्भगवद्गीता और अनेक योग उपनिषदों में भी प्राणायाम का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। प्राणायाम का अभ्यास मनुष्य के बाह्य एवं आंतरिक व्यक्तित्व को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करता है और अनेक शारीरिक एवं मानसिक लाभ प्रदान करने के साथ-साथ साधक की आध्यात्मिक उन्नति में भी मुख्य भूमिका निभाता है। परंतु प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व शरीर में फैली 72000 नाड़ियाँ, जिनके माध्यम से सम्पूर्ण शरीर में प्राण का प्रवाह होता है, उन नाड़ियों की शुद्धि अति आवश्यक है। जिस प्रकार एक पानी की नली में से जल को प्रवाहित करने के लिए नली का साफ एवं शुद्ध होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार प्राण वायु को सुचारु रूप से प्रवाहित होने के लिए नाड़ियों की शुद्धि होना अति आवश्यक है । नाड़ियों की इसी शुद्धि के लिए नाड़ीशोधन प्राणायाम का वर्णन अनेक हठयोग के ग्रंथों एवं योग उपनिषदों में किया गया है ।

नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास को समझने से पहले **प्राण** एवं **नाड़ी** की अवधारणा को समझना आवश्यक है क्योंकि प्राणों का नाड़ियों मे प्रवाह ही प्राणायाम कहलाता है। इसलिए इनका संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है ।

6.4.1 प्राण एवं नाड़ी की अवधारणा

- **प्राण** - प्राण जीवन शक्ति है। प्राण वह सूक्ष्म ऊर्जा है जिसके माध्यम से ही कोई जीव जीवित रह सकता है । श्वास प्राण की स्थूल प्रतीक है परंतु श्वास के बिना तो फिर भी कुछ क्षणों तक रहा जा सकता है किन्तु प्राण के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रहा जा सकता। प्राण पूरे शरीर में संव्याप्त रहता है एवं विविध कार्य करता है,**देहस्थिते वायुः प्राण उच्यते (गोरक्षतकम् 42)।** प्राण वायु के स्थान एवं कार्यों के आधार पर इसे मुख्यतः 2 भागों में विभाजित किया जाता है -

प्राण - प्राण, अपान, समान, उदानऔर व्यान

- **प्राण** - प्राण सभी वायु में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । इसका स्थान हृदय क्षेत्र है और इसका कार्य श्वास-प्रश्वास की क्रिया को सम्पन्न करना है ।
- **अपान** - अपान का स्थान नाभिके नीचे गुदा स्थान तक होता है । यह उत्सर्जन एवं प्रजनन अंगों को कार्यान्वित करता है ।
- **समान** - इसका स्थान उदर प्रदेश है । यह पाचन संबंधित कार्यों का निर्वाहन करता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

- **उदान** - यह कंठ में प्रतिष्ठित रहता है । इसका कार्य वाणी एवं भोजन आदि अवयवों को ग्रहण करना है ।
- **व्यान** - यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है । यह श्वास एवं भोजन के माध्यम से प्राप्त हुई ऊर्जा को पूरे शरीर में स्थानांतरित करने का कार्य करता है ।

उप-प्राण - नाग, कूर्म, कृकर (कृकल), देवदत्त और धनंजय

- **नाग** - यह डकार उत्पन्न करता है एवं उदर का भार कम करता है।
- **कूर्म** - यह नेत्रों को कार्यान्वित करता है एवं पलक झपकने का कार्य करता है ।
- **कृकल** - यह खाँसने, छींकने एवं भूख बढ़ाने का कार्य करता है ।
- **देवदत्त** - यह जंभाई लाता है और निद्रा को संतुलित करता है ।
- **धनंजय** - यह पूरे शरीर में रहते हुए शरीर का पोषण करता है एवं मृत्यु के पश्चात सबसे अंत में शरीर को छोड़ता है ।

- **नाड़ी** - सम्पूर्ण मानव शरीर में अति सूक्ष्म नलिकाओं का एक अति जटिल एवं विशाल तंत्र फैला हुआ है जिसे हम नाड़ियों के नाम से जानते हैं। इन नाड़ियों के माध्यम से ही प्राण का प्रवाह सम्पूर्ण शरीर में हो पाता है। नाड़ी शब्द नाड्यधातु से बना है जिसका अर्थ होता है प्रवाह। इन अतिसूक्ष्म नाड़ियों का अनुभव सामान्य चेतना के व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है, इनका अनुभव चेतना के उच्च स्तर पर जाकर ही संभव है । विभिन्न ग्रंथों में इनकी संख्या अलग-अलग मानी गई है परंतु अधिकांश मतों के अनुसार इनकी संख्या 72000 है जिनका उद्गम स्थल कंद को माना गया है जो शरीर के मध्य में गुदा स्थान से 2 अंगुल ऊपर एवं जननांग के 2 अंगुल नीचे, अंडाकार आकृति का है।

वैसे तो प्रत्येक नाड़ी महत्त्वपूर्ण है परंतु इनमे से 14 नाड़ियों को प्रमुख माना गया है जिनका वर्णन शांडिल्य उपनिषद् में प्राप्त होता है -

1. इड़ा	8. यशस्विनी
2. पिंगला	9. विश्वोदरि
3. सुषुम्ना	10. कुहु
4. सरस्वती	11. शङ्खिनी
5. वारुणी	12. पयस्विनी
6. पूषा	13. अलम्बुसा
7. हस्तिजिह्वा	14. गान्धारी

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

इन 14 नाड़ियों में भी इड़ा (बायीं नासिक), पिंगला (दायीं नासिक) एवं सुषुम्ना (इडा एवं पिंगला के मध्य) को महत्त्वपूर्ण माना गया है और सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुषुम्ना नाड़ी को कहा गया है क्योंकि इसी नाड़ी में प्राण का प्रवाह होने से ध्यान की उच्चतम अवस्थाओं (समाधि) का लाभ होता है।

6.4.2 नाड़ीशोधन की विधि -

अनेक योग उपनिषदों एवं हठयौगिक ग्रंथों में नाड़ी शोधन की विधि, उपयुक्त स्थान, अभ्यास का समय आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है।

- **हठप्रदीपिका के अनुसार -**

हठप्रदीपिका में नाड़ीशोधन प्राणायाम को अष्ट कुम्भकों में सम्मिलित नहीं किया गया है परंतु इस प्राणायाम को अन्य 8 प्राणायामों के पूर्व तथा नियमित रूप से करने के लिए कहा गया है।

स्वात्माराम जी के अनुसार आसनों का अभ्यास हो जाने पर, इंद्रियों पर नियंत्रण रखते हुए तथा उपयुक्त आहार लेते हुए साधक को गुरु के निर्देशानुसार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि वायु एवं चित्त का सीधा संबंध होता है। जब शरीरस्थ वायु चलायमान होती है तो व्यक्ति का चित्त भी चंचल हो जाता है और इसी प्रकार यदि वायु को नियंत्रित कर लिया जाए तो चित्त भी स्थिर हो जाता है। शरीर में फैली हुई अनेकों सूक्ष्म नाड़ियों में यदि मल व्याप्त रहता है तो उनमें प्राण का समुचित प्रवाह संभव नहीं हो पाता जो अनेकों रोगों की उत्पत्ति का कारण है। इस हेतु भी नाड़ीशोधन का अभ्यास अत्यंत आवश्यक है। नाड़ीशोधन का अभ्यास साधक को प्रातः, मध्याह्न, सायं तथा अर्धरात्रि, इस प्रकार दिन में चार बार करना चाहिए और अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए कुम्भकों (प्राणायाम) की संख्या अस्सी (80) तक करनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक बार में 20 कुम्भक। शस्त्रों में प्राणायाम के अभ्यास के 3 स्तर बताए गए है। प्रथम स्थिति में शरीर से पसीना निकलता है। द्वितीय (मध्यम) स्थिति में शरीर में कम्पन्न उत्पन्न होता है और तृतीय (उत्तम) स्थिति में प्राण ब्रह्मरंध्र में पहुँचता है। जो पसीना प्राणायाम के अभ्यास से उत्पन्न होता है उसे शरीर पर ही मल लेना चाहिए ऐसा करने से शरीर में शक्ति तथा स्फूर्ति आती है। अभ्यास की आरंभिक अवस्था में दूध और घी युक्त भोजन ही सबसे उत्तम माना जाता है परंतु अभ्यास के दृढ़ होने के पश्चात् इन नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं है। प्राणायाम के अभ्यास की तुलना शेर, हाथी, बाघ आदि को धीरे-धीरे वश में करने से की गई है क्योंकि यदि अभ्यास में अनावश्यक शीघ्रता की जाए तो यह साधक के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यदि प्राणायाम का अभ्यास उचित विधि से किया जाए तो सभी रोगों का नाश होता है परंतु गलत अभ्यास अनेक रोग जैसे - हिचकी, दमा, खांसी, सिरदर्द, आँख एवं कान में पीड़ा आदि अनेकों रोगों की उत्पत्ति करता है। उचित विधि से नाड़ीशुद्धि होने पर बाह्य लक्षण भी प्रकट होते है जैसे शरीर पतला और कांतिमान हो जाता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, नाद का अनुभव होता है और आरोग्य लाभ होता है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

विधि-

बद्धपद्मासनो योगी प्राणंचन्द्रेण पूरयेत्।

धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत्॥ (2/7 हठप्रदीपिका)

प्राणंसूर्येण चाकृष्यपूरयेदुदरं शनैः ।

विधिवत्कुम्भकं कृत्वा पुनश्चन्द्रेण रेचयेत्॥ (2/8 हठप्रदीपिका)

येन त्यजेत्तेन पीत्वा धारयेदतिरोधतः ।

रेचयेच्चततोऽन्येन शनैरेव न वेगतः ॥ (2/9 हठप्रदीपिका)

अर्थात् पद्मासन में बैठकर साधक को चन्द्रनाड़ी (बाएँ नथुने) से श्वास अंदर लेना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार श्वास को रोककर सूर्यनाड़ी (दायें नथुने) से श्वास छोड़नाचाहिए और तब पुनः प्राणवायु को सूर्यनाड़ी(दायें नथुने) द्वारा खींचकर धीरे-धीरे उदर को भरना चाहिए फिर विधिवत् कुम्भक करके चन्द्रनाड़ी(बाएँ नथुने) से वायु छोड़ना चाहिए । जिससे श्वास छोड़ा हो उससे श्वास लें और श्वास को तबतक रोकें जब तक श्वास छोड़ने की संवेदना न हो और तब दूसरे नथुने से श्वास को धीरे-धीरे छोड़ें, कभी भी वेग से नहीं।

हठप्रदीपिका के अनुसार इस प्रकार लगातार प्राणायाम का अभ्यास करने पर योगसाधकों के नाड़ीसमूह तीन मास से कुछ अधिक समय में निर्मल हो जाते है।

पाठ्य-प्रश्न

13. सम्पूर्ण शरीर में______नाड़ियों का जाल फैला हुआ है।
14. नाड़ियों का उद्गम स्थल ______को माना गया है।
15. मृत्यु के पश्चात्_______वायु सबसे अंत में शरीर को छोड़ता है।
16. इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाड़ियाँ हैं। सही/गलत
17. प्राणायाम से उत्पन्न पसीने को शरीर पर मलने से शक्ति तथा स्फूर्ति आती है। सही/गलत

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

6.4.3 नाड़ीशोधन प्राणायाम की सावधानियाँ

नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास निश्चित रूप से अनेक लाभ प्रदान करता है परंतु यह एक कठिन अभ्यास है इसलिए इसका अभ्यास सावधानी के साथ जागरूक होकर करना चाहिए -

1. हठप्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम जी कहते हैं -

   अथासने दृढेयोगी वशी हित-मिताशनः।

   गुरूपदिष्ह्ट-मार्गेण प्राणायामान्समभ्यसेत ॥ (हठप्रदीपिका **2/1)**

   अर्थात् आसन का अभ्यास हो जानेपर, इंद्रियों को नियंत्रण में रखकर तथा उपयुक्त आहार लेते हुए ही साधक को गुरु के निर्देशानुसार ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

2. इसके साथ ही हठप्रदीपिका में कहा गया है - **प्रणायामं ततः कुर्यान्नित्यं सात्विकया धिया (हठप्रदीपिका 2/6)** - अर्थात् प्राणायाम काअभ्यासप्रतिदिन सात्विक बुद्धि के साथ करना चाहिए।

3. साधक को प्राणायाम का अभ्यास प्रातः, मध्याह्न, सांय, तथा अर्धरात्रि, इस प्रकार दिन में चार बार करते हुए कुम्भकों की संख्या धीरे-धीरे अस्सी तक करनी चाहिए (20×4= 80)

4. योगाभ्यास के आरंभ में दूध और घी युक्त भोजन करना चाहिए। इसके बाद अभ्यास के दृढ़ हो जाने पर इन नियमों का आग्रह आवश्यक नहीं है।

5. हठप्रदीपिका में कहा गया है - **अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः**(हठप्रदीपिका 2/16) अर्थात् प्राणायाम के गलत अभ्यास से सभी रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए अभ्यास को अत्यंत सावधानी के साथ उचित मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

6. यदि शरीर में स्थूलता एवं कफ अधिक हो तो अभ्यास के पूर्व षट्कर्मों का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

7. योगतत्त्व उपनिषद् के अनुसार योग में बाधा पहुँचाने वाले तत्त्व जैसे नमक, तेल, खटाई, गर्म, रूखा, तीक्ष्णभोजन, हरे साग, हींग, आदि मसाले, आग से तापना, स्त्री प्रसंग, अधिक चलना, उपवास तथा अपने शरीर को पीड़ा पहुँचाने वाले अन्य कार्यों को प्रायः त्याग देना चाहिए।

8. शांडिल्य उपनिषद् के अनुसार तीव्र गति से अभ्यास करने पर वायु योगी का विनाश कर देती है। इसलिए अभ्यास की गति को सहज बनाए रखते हुए ही अभ्यास करना चाहिए।

@DDCE/COL/SOL/University of Delhi

© *Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi*

पाठ्य-प्रश्न

18. नाड़ीशोधन का अभ्यास_____के निर्देशानुसार ही करना चाहिए।
19. कुम्भकों की संख्या धीरे-धीरे_____तक करनी चाहिए।
20. प्राणायाम के गलत अभ्यास से रोगों की उत्पत्ति होती है। सही/गलत
21. प्राणायाम का अभ्यास तीव्र गति से करना चाहिए। सही/गलत

6.4.4 नाड़ीशोधन प्राणायाम के लाभ

यदि नाड़ीशोधन के अभ्यास को सभी सावधानियों को ध्यान में रखते हुए किया जाए तो यह निश्चित ही साधक को अनेकों लाभ प्रदान करता है -

1. नाड़ीशोधन प्राणायाम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लाभ है नाड़ियों की शुद्धि। नाड़ियों का शोधन होने से उनमें प्राण का प्रवाह उपयुक्त रूप से होता है जो योगाभ्यास के अन्य उच्च अभ्यासों के लिए अत्यंत आवश्यक है।
2. हठप्रदीपिका के अनुसार अभ्यास के द्वारा निकले हुए पसीने को शरीर पर ही मल लेना चाहिए। ऐसा करने से शरीर में बल एवं स्फूर्ति का वर्धन होता है ।
3. हठप्रदीपिका में यह भी कहा गया है - **प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्**(हठप्रदीपिका 2/16) अर्थात् उचित रीति से प्राणायाम करने पर सभी रोगों का नाश होता है।
4. प्राणायाम से और भी कई लाभ होते हैं, जैसे शरीर पतला और कांतिमान हो जाता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है, नाद का अनुभव होता है और आरोग्य लाभ होता है ।
5. प्राणायाम के माध्यम से वायु पर नियंत्रण स्थापित होता है जिसके द्वारा मन की चंचलता भी कम हो जाती है और मन स्थिर हो जाता है।
6. योगतत्त्व उपनिषद् के अनुसार इस अभ्यास से मल-मूत्र न्यून हो जाता है एवं निद्रा भी घट जाती है । कीचड़, नाक, थूक, पसीना, मुख की दुर्गंध आदि योगी को नहीं होती। योगी को भूचर सिद्धि की भी प्राप्ति होती है।
7. नाड़ीशोधन प्राणायाम का नियमित अभ्यास श्वसन तंत्र को नियंत्रित करता है एवं शरीर में आक्सिजन की मात्रा को बढ़ाता है ।
8. इसका अभ्यास अतिरिक्त तनाव को भी कम करने में बहुत सहायता करता है ।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

9. यह मस्तिष्क को भी चुस्त, क्रियात्मक एवं संवेदनशील बनाता है।
10. नाड़ीशोधन का अभ्यास अन्य प्राणायामों के प्रभावों को भी बढ़ाता है ।
11. इसका अभ्यास दमा, कफ संबंधी रोग, हड्डी, चर्म एवं रक्तचाप के नियंत्रण में भी अतिलाभदायक तथा माइग्रेन एवं साइनस में भी विशेष रूप से लाभ पहुँचाता है ।

पाठ्य-प्रश्न

22. उचित रीति से प्राणायाम करने पर सभी रोगों का नाश होता है। सही/गलत
23. नाड़ीशोधन का अभ्यास अन्य प्राणायामों के प्रभावों को भी बढ़ाता है। सही/गलत
24. प्राणायाम के माध्यम से वायु पर नियंत्रण स्थापित होने पर ______भी स्थिर हो जाता है।
25. प्राणायाम के अभ्यास से शरीर ______और______हो जाता है।

6.5 सारांश

इस प्रकार इस अध्याय में हमनें सीखा कि सूर्यनमस्कार एक प्रमुख योग अभ्यास है जो सात आसनों व 12 चरणों की दो आवृत्ति में पूर्ण होता है, जिसके अनेक शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ हैं। नाड़ीशोधन प्राणायाम एक महत्त्वपूर्ण प्राणायाम है जो शरीर को शुद्ध परिपुष्ट एवं मन को एकाग्र करने में अत्यधिक उपयोगी है।

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **मेरुदण्ड** - रीढ़ की हड्डी
- **क्षति** - चोट, हानि
- **शिथिल** - ढीला
- **आवृत्ति** - दुहराव
- **दक्षता** - कुशलता, निपुणता
- **प्राण** - जीवनी शक्ति
- **कुशा** - घाँस

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning,
School of Open Learning, University of Delhi

6.7 पाठ्य प्रश्नों के उत्तर

1. 7आसन, 12चरण	14. कंद
2. गलत	15. धनंजय
3. मंत्र एवं चक्र	16. सही
4. सही	17. सही
5. तनाव	18. गुरु
6. सूर्योदय	19. 80
7. 4घंटे	20. सही
8. सही	21. गलत
9. लचीला	22. सही
10. 8वर्ष	23. सही
11. सही	24. मन
12. सही	25. पतला और कांतिमान
13. 72000	

© DDCE/COL/SOL/University of Delhi

6.8 अभ्यास-प्रश्न

1. सूर्यनमस्कार पर एक परिचयात्मक निबंध लिखें।
2. सूर्यनमस्कार के 12 चरणों का वर्णन करें।
3. सूर्यनमस्कार मे सम्मिलित आसनों पर प्रकाश डालें।
4. सूर्यनमस्कार अभ्यास से संबंधित सावधानियों तथा लाभों का विवेचन करें।
5. प्राणायाम के महत्त्व को रेखांकित करें।
6. प्राण के विविध स्वरूपों का वर्णन करें।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi

7. नाड़ियों के विविध प्रकारों का विवेचन करें।

8. नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास का वर्णन करें।

9. नाड़ीशोधन के लाभों पर प्रकाश डालें।

6.9 संदर्भ-ग्रन्थ

- दिगम्बर स्वामी, हठप्रदीपिका - स्वात्माराम कृत्(2017), कैवल्यधाम, श्रीमन्माधव योग मंदिर समिति, लोनावाला
- निरंजनानन्द स्वामी, घेरण्ड संहिता (2012), योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,, मुंगेर, बिहार

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- सरस्वती स्वामी सत्यानंद, आसन,प्राणायाम,मुद्रा, बंध(2017),योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
- सरस्वती स्वामी सत्यानंद,सूर्य नमस्कार(2009),योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार
- आयंगर बी के एस,लाइट ऑन प्राणायाम (2005),एलीमेंट पब्लिकेशन
- बसवारेड्डी ईश्वर,मोनोग्राफ ऑन योग (2008),मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली

DDCE/COL/SOL/University of Delhi

उद्घोषणा (Disclaimer)

वर्तमान अध्ययन सामग्री का पाठ-3 सी.बी.सी.एस. सेमेस्टर सिस्टम के तहत पहले से उपलब्ध बी.ए. (प्रोग्राम) सेमेस्टर-III SEC-संस्कृत के इकाई-VI (पाठ-2) तथा इकाई-I (पाठ-3) का कुछ संशोधित अंश है। शेष सामग्री नए NEP पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है।

© Department of Distance & Continuing Education, Campus of Open Learning, School of Open Learning, University of Delhi